गिरीश कारनाड

तुग़लक

गिरीश कारनाड

अनुवाद
बी० वी० कारन्त

राधाकृष्ण

भूमिका

भारतीय रंगमंच के विकास में छठा दशक अनेक कारणों से बहुत ही समृद्ध और महत्वपूर्ण कालों में से एक माना जाएगा। सबसे स्पष्ट और सबसे प्रमुख कारण यही है कि इन वर्षों में रंगकला की आनुषंगिक शाखाओं—नाट्य-लेखन, अभिनय, निर्देशन, मंच-परिकल्पना एवं प्रकाश-व्यवस्था—ने विशिष्ट प्रतिभाओं के ज़रिये प्रौढ़ता प्राप्त कर ली।

उन्नीसवीं शताब्दी से ऐतिहासिक नाटक का लेखन भारतीय नाट्य-परंपरा का महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। बंगला, मराठी, हिन्दी और उर्दू के अनेक विशिष्ट नाटकों का ताना-बाना ऐतिहासिक तथ्यों और चरित्रों के इर्द-गिर्द बुना गया। नाट्य-क्षेत्र का यह पक्ष अभिनेताओं और दर्शकों—दोनों के लिए समान रूप से आकर्षक और सुखदायी रहा है; ऐतिहासिक नाटकों में बड़े पैमाने पर लम्बे तेज़-तर्रार ढंग से बोले गये वाद-संवादों और दुस्साहसपूर्ण हावभाव के अभिनय की एवं बृहदाकार दृश्यबंधों और वेशभूषा की गुंजाइश रहती है। ये नाटक बीते युगों की स्मृति को जगाकर एक रूमानी तथा शौर्यपूर्ण आत्मोत्सर्ग के वातावरण को पैदा करते हैं और बड़े पैमाने पर घट रही और स्थानीय नाटकों की रसहीन गति की तुलना में बृहत्तर अर्थवत्ता की घटनाओं में भाग लेने की चेतना को दर्शकों में जगाते हैं।

मनोविज्ञान की राह से ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को बेहतर ढंग से समझने की कोशिश अब पिछले कुछ समय से होने लगी है। नाटककार अब किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व के निजी, मानवीय जीवन के अन्वेषण

में रहने लगा है : उसका व्यक्तिगत जीवन क्या था ? घर में उसके सम्बन्ध कैसे थे ? अंतरंग परिवार के सम्बन्धों के स्तर पर उसे क्या संघर्ष और क्या तनाव झेलने पड़ते थे ? आदि। फिर इस बात की तलाश रहती है कि किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के द्वि-स्तरीय जीवन का पारस्परिक सम्बन्ध क्या था : उसके सार्वजनिक और शासकीय जीवन और उसके अपने और व्यक्तिगत जीवन में ? शासन-सम्बन्धी जीवन में व्यस्त रहने का मतलब पारिवारिक और व्यक्तिगत खुशियों की बलि में दिखाई पड़ता था। चरित्र के व्यक्तिगत जीवन के परोक्ष में छिपी ताक़तों और दबावों का नतीजा प्रायः राजनीतिक चालों में भी देखने को मिलता था। इन सब नाटकीय घटनाओं का विवेचन हमें राजनीतिक परिस्थिति को समझने-बूझने की नयी दृष्टि देता है।

इस दृष्टि से यह समझना कठिन नहीं है कि गिरीश कारनाड ने तुग़लक के चरित्र और काल को अपने नाटक के लिए क्यों चुना। एक कारण, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, कन्नड़ में ऐतिहासिक नाटकों का प्रायः अभाव-सा है। निश्चय ही केवल इसी से उन्हें प्रेरणा न मिली होगी। इस महान शासक के बृहद आदर्शों, स्वप्नों और आकाश को छूने वाली आकांक्षाओं में, तदनन्तर उसके आमूल पराभव में उन्हें भारतीय समसामयिक वस्तुस्थिति का बोध हुआ होगा। कुछ ही वर्षों में तुग़लक की गगनचुंबी योजनाएँ और स्वप्न धूल में मिट गये; अपनी इच्छाओं की पूर्ति में बाधा बनने वाले सभी व्यक्तियों को उसने मौत के घाट उतार दिया, और अन्त में उसने यही पाया कि अपने ही उलझन-भरे अस्तित्व की छायाओं से वह ज़िन्दगी-भर लड़ता रहा। निपट अकेला, शवों के झुंडों से और अपने ही हाथों किये सर्वनाश से घिरा हुआ वह उन्माद के छोर तक पहुँच गया।

नाटक के आरम्भ से, जैसे-जैसे वह आम लोगों के सामने बड़ी-बड़ी योजनाएँ प्रस्तुत करता है, ताकि उनका समर्थन प्राप्त कर सके, हमें विरोधाभास देने वाला एक व्यंग्य भी दिखलाई पड़ता है। बादशाह द्वारा उठाये गये हर क़दम का अपने हित-साधन के लिए विकृत अर्थ लगाकर अज़ीज़ तुग़लक की सदाशयता की खिल्ली उड़ाता है। तुग़लक की प्रत्येक सोद्देश्य और सद्भावनाओं से प्रेरित कार्यवाही कुटिल अज़ीज़ द्वारा हास्यास्पद रूप में पेश की जाती है।

तुग़लक ने पाया कि उसकी योजनाओं में उसके सर्वाधिक विश्वस्त व्यक्ति ही धोखा देते हैं; उसे कोई नहीं समझता; उसके सपनों का कोई भागी नहीं बनता; अपने क्षुद्र हितों से हटकर देख पाने

की किसी में क्षमता नहीं है और धोखे और विद्रोह के अतिरिक्त और किसी बात को कोई सोच ही नहीं पाता। अन्त में, उसकी अपनी सौतेली माँ भी, जिसके प्रति उसको लगाव है, उसे धोखा देती है। ऐसी प्रत्येक परिस्थिति का तुग़लक को एक ही हल मालूम है—तलवार की मदद लेना और विरोधियों का सफ़ाया कर देना। उसकी असफलता राष्ट्र के लिए एक भयंकर दुर्घटना है, और उसके आदर्शों के प्रसाद के ढहने के साथ उसका मस्तिष्क भी जवाब दे जाता है।

नाटक का मुख्य कार्यव्यापार निरन्तर दो स्तरों पर चलता है—दरबार का स्तर जहाँ कि बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाई जाती हैं, और अज़ीज़ का स्तर, जहाँ यही योजनाएँ विफल की जाती हैं। इनके अतिरिक्त दृश्यस्थल दरबार से हटकर षड्यन्त्र रचते हुए अमीर-उमरा, बेचैन, परेशान भीड़, कुटिल उपाय खोजते हुए अज़ीज़, और फिर वापस दरबार की ओर मुड़ आता है। नाट्य-वेग में ढिलाई लाये बिना राजनीतिक और शासकीय प्रश्नों को नाट्य के कार्य के साथ सम्पृक्त किया गया है। विभिन्न दृश्यों का आकर्षण एक समान बना रहता है और बीच-बीच में दरबारी शानो-शौक़त उन्हें राजकीय भव्यता भी प्रदान करती है।

बहुत सीमित साधनों की सहायता से कारनाड अनेक आकर्षक चरित्रों की रचना में सफल हुए हैं: सौतेली माँ, जो तुग़लक के प्रति अनुरक्त है, चालाक और दूसरों को अपने अंकुश में रखने की प्रवृत्ति से युक्त, उसके और उसके वज़ीरे-आज़म नजीब में जो घनिष्ठता है उसे सहने में अशक्त, जबकि नजीब दक्ष और निःशंक है, और तुग़लक के प्रति प्रतिबद्ध; धार्मिक नेता शेख़ इमामुद्दीन, जिसने तुग़लक की सत्ता को चुनौती दी लेकिन राजनीतिक दाव-पेंच के खेल में उससे बुरी तरह पिट गया; दरबार का वाक़या-नवीस बरनी—जो घटनाओं के चक्र से घबराकर अपने बादशाह को छोड़ जाता है; शहाबुद्दीन, रतनसिंह, अज़ीज़, आज़म, जवान पहरेदार—ये सभी चरित्र अपनी समग्रता में कल्पित किये गए हैं और नाटक में अपनी नाटकीय पात्रता को निबाहते हुए अपने में भी दिलचस्प हैं।

नाटक के अनुवाद की भाषा में एक आश्चर्यजनक प्रवाह और चमत्कार है। इसमें ओजपूर्ण, प्रभावशाली लम्बे-लम्बे भाषण भी हैं—जबकि तुग़लक अपने आदर्श की अनुभूति की सघनता से दोलायमान होता है, और शान्तमुद्रा में गहरी विचारशक्ति से पूर्ण कथन भी—जबकि दौलताबाद के क़िले की फ़सील पर तुग़लक बरनी के सामने

अपने दिल की बातें खोलकर कहता है। अज़ीज़ के संवादों की भाषा भी उसके, तुग़लक के ठीक विपरीत, चरित्र के उपयुक्त पात्र की भाषा है। शेख इमामुद्दीन और बादशाह के बीच के तीखे वाद-संवाद में नंगी तलवारों की टकराहट-सी सुनाई पड़ती है। कारनाड की सूझबूझ कभी नहीं डगमगाती; उनके सभी चरित्र मांसमज्जा और प्राणों की उमंग से भरे-पूरे चरित्र हैं, और प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी विशिष्ट बोली में बात करता है।

—इब्राहिम अलकाज़ी

तुग़लक

निर्देशक का वक्तव्य

इब्राहिम अलकाज़ी

दृश्य-विधान

'तुग़लक' की प्रस्तुति की परिकल्पना हमने नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के खुले रंगमंच के ख़याल से तैयार की थी। मंच का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है जिसमें पीपल का एक वृहदाकार और सुन्दर पेड़ इस प्रकार स्थित है कि वह कार्य-व्यापार को एक केन्द्र प्रदान करने के साथ-साथ मंच-चित्र को अन्विति भी देता है।

प्रस्तुत नाटक विशद निरूपण के उपयुक्त तो है ही, वह वस्तुतः उसकी माँग भी करता है। अतएव दृश्य-विधान की कल्पना ऐसी होनी चाहिए जो कार्य-व्यापार की व्याप्ति और शक्ति को बल प्रदान कर सके। सबसे पहले तो अग्रमंच का वह मुख्य कार्य-क्षेत्र है जिसका भीड़ के दृश्यों और जुलूस के दृश्यों के लिए पूरा-पूरा इस्तेमाल होता है।[1] पृष्ठमंच के दक्षिण में तुग़लक का अध्ययन-कक्ष है। इसे सुरुचि से सजाया गया है: दीवार से दीवार तक फ़र्श बिछाया गया है। इसमें शाही तख़्त और दो नीची मेज़ें हैं जिनमें से एक पर उनकी शतरंज बिछी है और दूसरी पर हरे रेशमी कपड़े से ढकी क़ुरान पाक़ रखी है रहल पर। क़ारी (क़ुरान पाक़ की आयतें पढ़नेवाला) इसका इस्तेमाल करता है जिससे मैंने नाटक के दौरान उपयुक्त अवसरों पर आयतें पढ़ने वाले पात्र का काम लिया है। अध्ययन-कक्ष की पिछली दीवार पर कई ताख हैं जो किताबों, नक्शों, पाण्डुलिपियों और यन्त्रों से ठसाठस भरे हैं ताकि तुग़लक की अध्ययनशील, वैज्ञानिक और अन्वेषणप्रिय रुचि का संकेत मिल सके। तुग़लक के मस्तिष्क में अत्यन्त मौलिक और साहसिक परि-कल्पनाएँ बुदबुदाती रहती हैं: जैसे दौलताबाद में नए नगर की योजना; दिल्ली

1. सारे निर्देश अभिनेता को दृष्टि में रखकर दिये गये हैं। मंच-दक्षिण का अर्थ है दर्शकों की ओर मुँह करके मंच के बीच में खड़े अभिनेता के दाहिने हाथ की ओर। अग्र-मंच का अर्थ है दर्शकों की ओर और पृष्ठमंच का अर्थ है दर्शकों से हटकर पीछे की ओर।

से दौलताबाद जाने वाले हज़ारों-लाखों परिवारों के लिए परिवहन, भोजन और दवा-दारू की बहुमुखी व्यवस्था; ताँबे के नये सिक्कों का चलन; नई प्रतिभाओं को प्रेरित करने के उद्देश्य से विद्यालयों और विद्या-भवनों की स्थापना (क्योंकि तुग़लक का यह गुण अत्यन्त विलक्षण था); नई सड़कों और सिंचाई व्यवस्था की परियोजना आदि-आदि। मूल अभिप्राय यह है कि एक ऐसे प्रतिभाशाली चरित्र का चित्रण हो जाय जो दूरदृष्टि में अपने समय से शताब्दियों आगे था और जिसका आधुनिक मन इस विशाल देश को एक राष्ट्र का रूप देने में लगा था, और जो इसी कारण अपने अमीर-उमराओं के संकीर्ण, सामन्तीय, क्षुद्र दृष्टिकोण को घृणा की दृष्टि से देखता था और क़दम-क़दम पर अपना धैर्य खो बैठता था क्योंकि उस की यह आकांक्षा थी कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ मिलकर एक हो जाएँ। तुग़लक की सारी विडम्बना यही है कि वह एक ऐसा द्रष्टा था जिसके दृष्टिकोण की व्यापकता उसके समकालीनों के लिए अबूझ पहेली थी। जब तक तुग़लक के चरित्र को यह आयाम न दिया जाय तब तक यह नाटक अर्थहीन रक्तपात और हिंसा का ही कांड बनकर रह जायगा।

तुग़लक के व्यक्तित्व के इस पहलू के बारे में मैंने कुछ विस्तार से लिखा है क्योंकि दृश्यबन्ध का एक विशिष्ट अंग यानी उसका अध्ययन-कक्ष ऐसा होना ज़रूरी है जो दृश्य के माध्यम से दर्शकों तक उसके इस पहलू का सम्प्रेषण कर सके। जैसा कि वह अपनी सौतेली माँ को बताता है, वह रात में घंटों अकेले बैठा पढ़ता-लिखता रहता है और मन ही मन अपनी योजनाओं को उलटता-पलटता रहता है। नाटक में दो दृश्य ऐसे हैं जिनमें सौतेली माँ को चुपचाप, रात गये उसके मन की बात जानने के लिए और शायद उसकी अंकशायिनी बनने के लिए उसके इस कक्ष में आते दिखाया गया है। वह जवान है, महत्त्वाकांक्षिणी है, तुग़लक से प्यार करती है और राजसत्ता के अधिकाधिक निकट रहना चाहती है।

यथार्थवादी दृश्यविधान से प्राय: शून्य खुले मंच पर यह ज़रूरी होता है कि कुछ विशिष्ट भागों को कतिपय प्रमुख चरित्रों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाय। तुग़लक का अध्ययन-कक्ष ऐसा ही भाग है। दूसरा भाग है हरम यानी सौतेली माँ का महल। यह एकदम पीछे की ओर है। मंच के केन्द्र से एक लम्बा रास्ता इस तक पहुँचता है जहाँ एक विशालकाय दरवाज़ा है: इस दरवाज़े की मेहराब, उस पर किया गया लिम्पंकन और अन्य मेहराबें—सब की सब तुग़लक-कालीन वास्तुकला और प्रकल्पना की विशेषताओं पर आधारित हैं जिसके नमूने तुग़लकाबाद में बनी ग़ियासुद्दीन तुग़लक की कब्र पर देखे जा सकते हैं। पर्सी ब्राउन के ग्रंथ 'इंडियन आर्कीटेक्चर (द इस्लामिक पीरियड)' में इस विषय की प्रचुर प्रामाणिक जानकारी मिलती है जिसके साथ अनेक रेखांकन और छायाचित्र भी दिये गये हैं। हम कई बार इन स्थलों को देखने गये ताकि हमें उनके स्वरूप,

बनावट और प्रसार का अन्दाज़ हो जाय। इस काम में हमें तत्कालीन वास्तुकला के विशेषज्ञ एक वास्तु-विशारद का भी मार्गदर्शन मिला। हालाँकि हम कोई यथार्थ-वादी दृश्यबन्ध नहीं बना रहे थे, फिर भी यह ज़रूरी था कि रूपरेखा, गुरुता और अनुपात उस युग की विशेषताओं के लिए सही हों।

हर अवसर पर सौतेली माँ अपनी बाँदियों के साथ इसी दरवाज़े से मंच पर प्रवेश करती है। जब वह तुग़लक के साथ अकेली रहना चाहती है तो बाँदियाँ रुख़सत हो जाती हैं।

पृष्ठकेन्द्र से एक चौड़ा ज़ीना दाहिनी ओर के चबूतरे तक जाता है जिस पर ऊँची मेहराब है। यह मंच का सबसे ऊँचा स्तर है, और यह मेहराब मंच का सबसे प्रमुख आकार। इसी की राह से तुग़लक अपने परिसर के साथ दो बार पूरे समारोह से मंच पर प्रवेश करता है—पहली बार पहले दृश्य में जब वह लोगों की भीड़ को सम्बोधन करता है, और दूसरी बार तब जब वह नाटक के उत्तरार्ध में खलीफ़ा के नुमाइन्दे की अगवानी करता है। इन दोनों महत्त्वपूर्ण अवसरों पर तुग़लक चित्र के शीर्ष में स्थित रहता है, सबके ऊपर, बहुत ऊँचे ताकि सबकी नज़रें उस पर टिक सकें। इस मुख्य मेहराब की स्थिति की मदद से ही तुग़लक और उसका परिसर मंच को तिरछे पार करता हुआ अग्रमंच तक पहुँचता है और फिर उसी प्रकार लौटकर मंच को तिरछे पार करता हुआ पृष्ठमंच की दाहिनी ओर से प्रस्थान कर जाता है।

अग्रमंच की बायीं ओर से जो सीढ़ियाँ जाती हैं वे दो चबूतरों पर पहुँचती हैं। निचले चबूतरे से जंगल के खुले स्थान का काम लिया जाता है जब खलीफा अज़ीज़ के हाथ पड़ जाता है। साथ ही वह अज़ीज़ के कक्ष का भी काम देता है जब वह खलीफ़ा के वेश में तुग़लक के दरबार में आता है। उपरला चबूतरा षट्-कोण की शक्ल का है जिसके पीछे ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं और अगल-बगल में जंगली घास छायी है। यह दौलताबाद के किले की फ़सील और कंगूरों का काम देता है जिसका सातवें दृश्य के रातवाले दृश्य में तुग़लक इस्तेमाल करता है।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह दृश्यविधान संकेतात्मक और वस्तुपरक है। जिसमें अलग-अलग स्तरों पर अभिनय-क्षेत्र हैं जो परस्पर सीढ़ियों से जुड़े हैं। इसकी चित्रात्मकता बड़ी प्रभावशाली हो जाती है और उसमें नम्यता की काफ़ी गुंजाइश रहती है। हमारे पास गहराई की जो सुविधा थी उसका हमने दूरी और परिप्रेक्ष्य की स्थापना के लिए भरपूर उपयोग किया। उदाहरण के लिए, दूसरे दृश्य में जब तुग़लक क़ारी का क़ुरान-पाठ सुनता है[1] तब सौतेली माँ अपनी

---

1. क़ुरान पाक की आयतें सुनने का वर्णन नाटक में नहीं था लेकिन एक सही वातावरण बनाने के लिए हमने इसे इस दृश्य में स्थान दिया।

बाँदियों के साथ मशालों की रोशनी में दरवाज़े के नीचे से आती दिखाई पड़ती है। पहले दृश्य की कोलाहलपूर्ण भीड़ और उग्र समारोह-संगीत के विपरीत इस समय के दृश्य और ध्वनि प्रभाव एकान्त और शान्ति की मन:स्थिति का संकेत कर देते हैं।

पहले से छठे दृश्य के लिए पूरे मंच पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक फ़र्श बिछा दिया जाता है। इतिहासकार इब्न-बतूता ने तुग़लकाबाद के तत्कालीन वर्णन में लिखा है, 'यहीं पर तुग़लक के महल और खज़ाने थे। और यहीं पर उसका बड़ा महल था जिसको उसने सोने की ईंटों से बनवाया था। सूरज निकलने पर ये ईंटें इतनी चमचमाती थीं कि कोई उनकी तरफ़ टकटकी नहीं लगा पाता था।' ये कीमती फ़र्श (फ़र्श किराये पर बहुत सस्ते मिल जाते हैं) तुग़लक के दरबार की शान-शौक़त और तड़क-भड़क का वातावरण बना देते हैं और सातवें दृश्य से दौलताबाद की उजाड़ दशा का वैषम्य स्थापित कर देते हैं क्योंकि तब सारे फ़र्श हटा दिये जाते हैं। इतना ही नहीं, ये फ़र्श एक व्यावहारिक आवश्यकता की भी पूर्ति करते हैं। शुरू के दृश्यों में अधिकांश बहुतेरे लोगों को बैठा दिखाया जाता है। और जैसा कि सभी तत्कालीन तुर्की चित्रों में दिखाया गया है, बादशाह तो तख्त पर बैठता है पर और सभी अमीर-उमरा फ़र्श पर बैठते हैं। इस सरल युक्ति से उपयुक्त वातावरण की रचना करने में तो सहायता मिलती ही है, पात्रों की सुन्दर पोशाकें भी मैली हो जाने से बच जाती हैं।

यह आवश्यक है कि इस नाटक की प्रस्तुति तत्कालीन मुस्लिम दरबार का वातावरण उपस्थित करे। इल्तुमिश और बलबन के ज़माने से ही दरबारी अदब-क़ायदे की बारीकियों का वर्णन मिलने लग जाता है। 'तबक़ात-अल-नासिरी' से लेकर 'आईने-अकबरी' तक के सारे ऐतिहासिक विवरणों में और लघु चित्रों में दरबारी अदब-क़ायदों के संकेत मिलते हैं और हमें अपनी खोज और जानकारी के लिए उनकी मदद लेना ज़रूरी है। यह काम सिर्फ़ ऊपरी अलंकरण नहीं है; यह तो नाट्यगत अर्थ का घनिष्ठ अंग है और चरित्रों के सम्बन्धों को स्थापित करने में सहायक होता है। उदाहरण के लिए, सौतेली माँ की तरह परदे में रहनेवाली बेगम राजनीतिक मामलों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का निश्चय करने के बाद मर्दों के बीच किस तरह का आचरण करे? अमीर-उमरा उसके साथ कैसा आचरण करें? तुग़लक उसके साथ कैसा आचरण करे? शाही जुलूस में किसको कहाँ जगह दी जाए? इबादतवाला इतना महत्त्वपूर्ण दृश्य किस तरह पेश किया जाय? अमीरों की पगड़ियाँ कैसी हों? नमाज़ में आगे कौन रहे? जुमे की नमाज़ में आयतें मन ही मन बोली जायें या ज़ोर-ज़ोर से? नाटक के दृश्यों में अमीर-उमरा कब-कहाँ तो जूते पहनें और कब-कहाँ नंगे पैर रहें? ऐतिहासिक नाटक के मंचन में इन सारे विवरणों पर बड़ा ध्यान देना पड़ता है, लेकिन दुर्भाग्य से अपने भारतीय

रंगमंच में इन्हीं बातों की उपेक्षा कर दी जाती है।

उदाहरण के लिए तुग़लक द्वारा शेख इमामुद्दीन को शाही लिवास पहनाने का दृश्य ही ले लीजिए। तुग़लक उसे क्रम से पहले शाही चोग़ा देता है, फिर कमर-बन्द, फिर तलवार और फिर पगड़ी ताकि पगड़ी पहनते ही वह हर तरह से तुग़लक जान पड़े। सिर्फ़ इसलिए नहीं कि वह शेख को इस वेश में मौत के घाट उतरवा देता है, वरन् इसलिए भी कि प्रतीकात्मक रूप में वह अपने व्यक्तित्व के ही एक पक्ष की हत्या कर रहा है।

खलीफ़ा ग़ियासुद्दीन की समारोहपूर्वक अगवानी भी अत्यन्त नाटकीय महत्त्व की है, क्योंकि यहीं पर पहली बार नाटक के दो प्रमुख सूत्र मिलते हैं: तुग़लक अपने ही विद्रूप के, अपने ही प्रतीक "मैं" के आमने-सामने खड़ा होता है।

निर्देशक का यह मूलभूत कर्तव्य है कि वह नाटक के अर्थ को सशक्त दृश्य-बिम्बों के ऐसे क्रम में जमा/दे कि दर्शकों को अनजान में ही उसका ग्रहण सुलभ हो जाय। लेकिन यद्यपि दर्शक तो उस अर्थ को अनजाने ही आयत्त करते हैं, निर्देशक को अपना एक-एक प्रभाव अत्यन्त सावधानी और मनन से नियोजित करना पड़ता है ताकि रूप, रंग, छन्द और ध्वनि परस्पर मिलकर एक सम्पूर्ण परिकल्पना में प्रस्फुटित हो जाएँ। कुछ बातें यदि वह भित्ति-चित्रों की शैली में दूर-दूर और बड़ी-बड़ी रेखाओं में खींचता है तो कुछ अंतरंग दृश्य वह लघु-चित्रों की शैली में नन्ही-नन्ही रेखाओं से अंकित करता है।

वेश-भूषा

दरबार की रंग-व्यवस्था तुर्की लघु-चित्रों में उपलब्ध फिरोज़ी, लाल, हरे और सुनहरे रंगों पर आधारित है। ये रंग उस युग की मूलभूत चाक्षुक भावन प्रकट करते हैं। पर इनके अलावा पोशाकों के कटाव, छायाकृति और घेर का भें महत्त्व है।

नाटक में चार प्रमुख समूह हैं: 1. भीड़, जो मिट्टी के रंगों में आती है—मुख्यत: भूरे और धूसर रंगों में; 2. अमीर-उमरा, जो भूरी और चटख़ गुलाबी पोशाकों में एक सुसम्वद्ध समूह के रूप में तुग़लक के विरुद्ध षड्यंत्र करते हैं; 3. दरबारी औरतें, जो फिरोज़ी, पन्ना और सोने के रंग की पोशाकें, जड़ाऊ टोपियाँ और सलमा-सितारे की चुनरियाँ पहनती हैं। इस व्यवस्था का उद्देश्य है उनके नारी-सुलभ आकर्षण पर बल देना और दरबार की मरदानगी से उनके वैषम्य को उजागर करना; 4. और तुग़लक जो या तो काली और सुनहरी पोशाक पहनता है या सफ़ेद और सुनहरी, और हर दृश्य में शाही अन्दाज़ में औरों से अलग दिखाई देता है। इबादत के दृश्य में वह काली पोशाक पहनता है और सिर को काली और धूसर धारियों वाले रूमाल से ढकता है। उसकी हत्या के प्रयास के बाद जब बन्दी

अमीर और सिपाही एकदम अचल खड़े रह जाते हैं तब एक तुग़लक ही अविचलित भाव से झुकता और उठता, इबादत करता दिखाई देता है।

सिपाहियों को चमड़े के ज़िरहबख़्तर, लोहे के नोकदार कनटोप, लोहे के छल्लों वाली चमड़े की पेटियाँ, बूट, तलवार और भाले दिये गये हैं। ज़ंजीरों की खनखनाहट, तलवारों की झनझनाहट और चमड़े का वज़न और भारीपन मिलकर एक ठोस फ़ौजी समा बाँध देते हैं।

संगीत

महीनों तक सुनते रहने के बाद कहीं जाकर मैं वे टुकड़े चुन पाया जिनको मिलाकर एक तरह से नाटक के संगीत की रचना की गई। ये टुकड़े मुख्यत: पारंपरिक तुर्की और फारसी संगीत से लिये गये हैं। प्रमुख रूप से इनकी तीन कोटियाँ हैं: 1. दरबारी समारोह और जुलूस का संगीत; 2. खुद तुग़लक के लिए वस्तुगीत जिसमें दृश्य-विशेष के वातावरण और मन:स्थिति के अनुकूल काफ़ी रद्दोबदल होता रहता है; और 3. स्थिति के अनुसार क़ुरान की आयतों का पाठ। यह पाठ एक मिसरी क़ारी ने किया जिन्हें इस समय दुनिया का सबसे उत्कृष्ट क़ारी माना जाता है। और सब बातों से बढ़कर क़ुरान पाक़ की इन आयतों ने ही नाटक के लिए उपयुक्त मन:स्थिति का निर्माण किया और तुग़लक के निजी वैयक्तिक संघर्ष को धार्मिक महत्त्वाकांक्षा और आस्था की बृहत्तर पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया। क़ुरान पाक़ का यह पाठ कानों में निरन्तर गूँजता रहता है और एक ऐसे अकेले व्यक्ति के प्रयास की असफलता व्यंजित करता है जिसके पास अपने ईश्वर के भरोसे के अलावा और कोई सहारा नहीं है।

गिरीश कारनाड

तुग़लक

कन्नड़ से अनुवाद : ब० व० कारन्त

पात्र

आज़म	हिन्दू औरत
अज़ीज़ (ब्राह्मण)	हिन्दू औरत का शौहर
मुहम्मद (सुलतान)	काका
सौतेली माँ	बूढ़ा
नजीब (वज़ीरे-आज़म)	एक शख़्स
बरनी (वाक़या-नवीस)	लोग १
शेख़ इमामुद्दीन	लोग २
शहाबुद्दीन	लोग ३
रतनसिंह	अमीर १
ग़ियासुद्दीन	अमीर २
शम्सुद्दीन (इमाम)	ढिंढोरची १
सैयद	ढिंढोरची २
करीम	नक़ीब
बुज़ुर्ग आदमी	ऐलान करने वाला
जवान	दरवान
शरीफ़	चोबदार
मज़हबी आदमी	सिपाही
हिन्दू	और अन्य

दृश्य : 1

(ई० 1327)

दिल्ली की एक अदालत का बाहरी हिस्सा, जहाँ लोगों का मजमा जमा है। मजमे में ज्यादातर मुसलमान हैं।

बुजुर्ग आदमी : कौन जाने हमारे मुल्क का अब क्या होगा !

जवान : क्यों बुजुर्गवार, कौन-सी आफ़त टूट पड़ी है आप पर ?

बुजुर्ग आदमी : एक हो तो बताऊँ ! मेरे सफ़ेद बालों की तरफ़ देखो जमाल, न जाने अब तक मैंने कितने सुलतानों को इस सरज़मीन पर बनते-मिटते देखा है। मगर यक़ीन मानो, ख्वाब में भी यह नहीं सोचा था कि एक दिन किसी ऐसे भी सुलतान को अपनी आँखों देखना पड़ेगा, जो ख़ुद एक मुजरिम की तरह हाथ बाँधे काज़ी के सामने पेश होगा।

जवान : आपका ज़माना लद गया, बुजुर्गवार ! वो भी क्या सुलतान हुआ जो रिआया से कोसों दूर किलेनुमा बन्द महल में बैठा हुकूमत करे। हक़ीकत में सुलतान वो है, जो आम आदमी की तरह ग़लत-सही काम करके भी तरक़्क़ी करे !

शरीफ़ : तुम समझे नहीं जमाल, सुलतान ग़लती करे या न करे... अपनी बला से। लेकिन अपनी ग़लतियों का गली-गली ढिंढोरा पिटवाने के क्या माने ? ऐसे में क्या कल रिआया शाही हुक्मों की क़द्र भी करेगी ? लगान देगी ? जंग में जायेगी ? ये तो वही मिसाल हुई कि खुद सुलतान ऐलान करें कि मेरी रिआया बाग़ी हो जाये।

मज़हबी आदमी : और वो भी एक देहाती बिरहमन के हाथों सज़ा क़बूल करे ! अल्लाह रहम करे, अब तो दीनो-ईमान ग़ारत ही समझो !

जवान : ईमान क्यों ग़ारत होगा जनाब ? शाही फ़रमान से क्या आप आगाह नहीं कि हर मुसलमान हर रोज़ लाज़मी तौर पर पाँच बार नमाज़ पढ़ें ? दूसरे कौन से सुलतान के अमल में क़ुरान-शरीफ़ पढ़ने वालों को गली-कूचों में घूमते देखा है ? आप ही फरमाएँ जनाब ! आप पहले कितनी बार नमाज़ पढ़ा करते थे ?

बुज़ुर्ग : महज़ क़ुरान-शरीफ़ लादे घूमने से कुछ हासिल नहीं होता, जमाल ! क़ुरान की तालीम को अमली सूरत दो, तो हम मानें।

मज़हबी : हाँ, सुनो तो सुलतान फरमाते हैं कि अब हिन्दू जज़िया न दें ! इससे सिवाय हिन्दुओं के और किसी को कुछ फ़ायदा है ? ख़ैर, छोड़ो एक-न-एक दिन सुलतान खुद समझ जायेंगे।

हिन्दू : पर मैं कहता हूँ कि इससे हिन्दुओं को रत्ती भर लाभ नहीं होने का। मेरी राय यह है कि मुसलमान मुसलमान ही बना रहे, और हिन्दू हिन्दू ही। लेकिन अपने सुलतान की बातों का तो कोई सिर-पैर ही नहीं मिलता। फ़रमाते हैं...'तुम कोई भी हो...चाहे हिन्दू या मुसलमान...सबसे पहले तुम इन्सान हो !' इन्सान ! राम राम ! ये कब क्या कर बैठेंगे, कोई यक़ीन नहीं। जानते हो ताज़ा फ़रमान क्या है ? 'हिन्दू लोग सती-रिवाज को बन्द कर दें।' अति हो गई। तब फिर हिन्दू-धर्म की खूबी ही क्या रहेगी ?

जवान : कैसे एहसान-फ़रामोश हैं आप ! सुलतान के हाथ में चाबुक रहे, तभी आप उसकी इज़्ज़त करेंगे।

ढिंढोरची अदालत से बाहर आता है। ढिंढोरा पीटता है। खामोशी छा जाती है।

ढिंढोरची : हाज़रीन ! हाज़रीन, खामोश हो जाएँ।
हाकिमे-अदालत, काज़ी-ए-मुल्क के बरहक़ फ़ैसले को सुनने के लिए तैयार हो जाएँ।
गाँव शिकनार की रैयत के फ़रियादी बिरहमन विष्णु परसाद की इस दरख्वास्त पर, कि खुदा-बन्द सुलतान

मुहम्मद शाह के हाकिमों ने हमारी जो ज़मीन जब्त कर कर ली थी उसके असली मालिक हम हैं इसलिए वह हमें वापस कर दी जाए, हाकिमे-अदालत काज़ी-ए-मुल्क ने विरहमन के हक़ में अपना फ़ैसला सुना दिया है।

इकट्ठी भीड़ में ज़रा-सा शोर-गुल शुरू होता है—जिसे ढिंढोरा पीटकर ख़ामोश किया जाता है।

: हाकिमे-अदालत ने फ़रमाया है कि बिष्नु परसाद की दरख्वास्त बिल्कुल जायज है। इसलिए सुलतान मय-जुरमाना वह ज़मीन बिरहमन को वापस कर दें।

ढिंढोरे की आवाज़ के साथ ढिंढोरची चला जाता है, और मजमे में फिर शोर-गुल बढ़ने लगता है।

शरीफ़ : ये तो अंधेर है। इस हंगामे का क्या मतलब ? या अल्लाह, हमारे सुलतान के होशो-हवास सलामत रख !

हिन्दू : मैं कहूँ, इस पर भरोसा ही न करो ! मेरी राय यह है कि इस कांड के पीछे ज़रूर कोई साज़िश है।

नक़ीब : होशियार ! होशियार ! बा-अदब, बा-मुलाहिज़ा होशियार ! ख़ुदा की राह के रहनुमा, रसूल के पैरो, खलीफ़ा के मददगार, खुदातर्स सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक तशरीफ़, ला रहे हैं !

शोर थम जाता है, सुलतान मुहम्मद बाहर आता है।

नक़ीब : हक़ के तरफ़दार, अद्लो-इन्साफ़ की तसवीर सुलतान मुहम्मद...

सब : सलामत रहे।

मुहम्मद : हमारी अज़ीज रिआया ! हाकिमे-अदालत, काज़ी-ए-मुल्क का फ़ैसला आपने सुना। हमारे चन्द कारिंदों की वजह से एक विरहमन के साथ जो ज़ुल्म हुआ, आपने देखा। हमने उस जुर्म का इक़बाल करके इन्साफ़-पंसदी और हक़ का रास्ता इख़्तियार किया है। मजहबी तफ़रीक़ की वजह से, टुकड़ों में बिखरी हुई हमारी सलतनत की तवारीख में, आज का यह लम्हा हमेशा ज़िन्दा रहेगा। इस पाक लम्हे को गवाह रखकर हम चन्द अल्फ़ाज़ तवारीख के पन्नों पर

दर्ज कराना चाहते हैं। हमेशा से हमारी ख्वाहिश रही है कि हमारी सलतनत में सबके साथ एक जैसा सलूक हो। खुशियाँ हों, शादमानी हो, और हर शख़्स को हक़ और इन्साफ़ हासिल हो। अपनी रिआया के अमनो-अमान ही नहीं, बल्कि ज़िन्दगी के हम ख्वाहिशमंद हैं...ज़िन्दा-दिली और खुशहाली से भरपूर ज़िन्दगी। हम अपनी अज़ीम सलतनत की भलाई के लिए एक नया क़दम उठाना चाहते हैं। हमारी तजवीज़ है कि इसी बरस हम अपना दारुल-खिलाफ़ा दिल्ली से दौलताबाद ले जाएँ!

भीड़ में हलचल, फिर कानाफूसी, जो बढ़ते-बढ़ते शोरगुल की सूरत इख़्तियार कर लेती है। मुहम्मद हाथ के इशारे से आवाज़ को ख़ामोश कर देता है, और अपनी तक़रीर जारी रखता है।

: हाँ, आप लोगों को हमारी तजवीज़ सुनकर ज़रूर हैरत हुई होगी। लेकिन हम सबको बता देना चाहते हैं कि यह किसी मग़रूर सुलतान का बेमानी ख़ब्त नहीं है। इसकी ठोस वजह है। दिल्ली हमारी सलतनत की उत्तरी सरहद के क़रीब आबाद है, जहाँ हर लम्हे मुग़लों के हमलों का ख़तरा दरपेश रहता है। और आप जानते ही हैं कि हमारी सल्तनत दूर दक्खिन तक फैली हुई है। एक दौलताबाद ही हमारी सलतनत के बारह सूबों के मरकज़ में आबाद है जहाँ से हम अपनी लम्बी-चौड़ी सलतनत के हर कोने पर हुकूमत की मज़बूत गिरफ़्त क़ायम रख सकते हैं। इससे भी अहम बात यह है कि दौलताबाद हिन्दुओं की आबादी है। हम अपने दारुल-खिलाफ़े को वहाँ ले जा कर हिन्दुओं और मुसलमानों में एक मज़बूत रिश्ता क़ायम करना चाहते हैं। इस नेक काम की ख़ातिर हम आप सब को दौलताबाद आने की दावत देते हैं। दावत दे रहे हैं, हुक्म नहीं। जिन्हें हमारे ख्वाबों की सदाक़त पर ज़रा भी यक़ीन हो, वही आएँ। महज़ उनकी मदद से हम एक ऐसी मिसाली हुकूमत क़ायम करेंगे जिसे देखकर सारी दुनिया दंग रह जाये। हमारे ख्वाबों की ताबीर बनने वालो! ख़ुदा हाफ़िज़।

मुहम्मद भीतर की तरफ़ मुड़ जाता है। क़ाज़ी, सिपाही, सब चले जाते हैं। 'सुल्तान सलामत रहें' का नारा दुबारा सुनाई पड़ता है।

शरीफ़ : कैसी ख़ौफ़नाक तजवीज़ है। सुलतान मामूली भूल करे तो फ़रियाद भी की जाए, मगर ऐसी संगीन भूल का दुखड़ा कहाँ रोएँ जनाब ?

मज़हबी : यह तो ज़ुल्म है, सरासर ज़ुल्म ! अपने वालिद के क़त्ल से जी नहीं भरा तो हम पर आफ़त ढाने पर तुले हैं। आख़िर दारुल-ख़िलाफ़े को दिल्ली से उखाड़ कर...

जवान : बस, बस, ख़बरदार जो सुलतान के ख़िलाफ़ एक लफ़्ज़ भी कहा।

मज़हबी : मुझ पर आँखें क्यों तरेरते हो, साहबज़ादे ? सारा जहान जानता है कि तुम्हारे सुलतान ने किस तरीक़े से अपने वालिद और भाई को क़त्ल कराया था। उतने में कलेजा ठंडा नहीं हुआ तो चले दारुल-सलतनत को...

जवान : आप मौजूद थे वहाँ ?

मज़हबी : कहाँ ?

जवान : जहाँ सुलतान के वालिद का इन्तक़ाल हुआ ?

मज़हबी : मेरी मौजूदगी से क्या होता है ? जो मौजूद थे...

जवान : मैं मौजूद था ! सुलतान, उनके वालिद, और भाई लकड़ी के बने मचान पर बैठे शाही फ़ौज का जुलूस देख रहे थे। उसी वक़्त अज़ान की आवाज़ सुनाई दी और ख़ुदातर्स सुलतान नमाज़ के लिए मचान से बाहर आए। इत्तिफ़ाक़ से जुलूस में से एक मतवाला हाथी अचानक मचान पर चढ़ बैठा। बस, बिजली की कड़क जैसी आवाज़ हुई, और मचान लहराता हुआ एकदम नीचे ज़मीन पर आ गिरा। बेचारे ! सुलतान के वालिद और भाई दोनों मलबे के नीचे दबकर मर गये। ख़ुदा का करम कि नेक-दिल सुलतान बाल-बाल बच गए।

हिन्दू : (व्यंग्य से) अच्छा ! मगर नेक-दिल सुलतान को उसी वक़्त बाहर निकल आने का इलहाम कैसे हुआ ?

जवान : आप नहीं जानते कि हमारे सुलतान नमाज़ के किस क़दर पाबन्द हैं ?

शरीफ़ : हाँ, हाँ, बख़ूबी ! दिल्ली-भर के बाशिंदों को डंडे के ज़ोर

से नमाज़ में हाँक देने का वह पाक काम और कौन कर सकता है ? मगर ताज्जुब तो यह है कि उस हाथी ने नमाज़ की पाबन्दी कब से सीखी !

सब लोग हँसते हैं।

: इसके अलावा वह लकड़ी का मचान भी, सुना है, नेक-दिल सुलतान के हुक्म से ही तामीर हुआ था। (हंसता है)

जवान उसे घूरकर देखता है।

बुज़ुर्ग : मुझे मालूम है, जमाल। अब मुझ जैसे बूढ़ों की कोई क़द्र नहीं। मगर उस शेख़ इमामुद्दीन को तो तस्लीम करोगे न ? उनकी मानिंद पाक-दिल, फ़क़ीराना तबीयत के शख़्स भी क्या बकवास करते फिरते हैं ? शेख़ मोअज्ज़म ने खुले आम फ़रमाया कि सुलतान ने ख़ुद अपने वालिद और भाई को क़त्ल किया। फिर शेख़ ने कोई चोरी-छुपे नहीं, खुले मजमे में यह ऐलान किया कि अपने वालिद और भाई को मरवाकर सुलतान ने कितना संगीन गुनाह किया है।

मज़हबी : आपने तो शेख़ मोहतरिम के दीदार भी किये होंगे ?

बुज़ुर्ग : खुश-किस्मती थी। कानपुर में मैंने उनकी तक़रीर को उनकी ज़ुबाने-मुबारक से सुना था। उनकी वह गूंजती हुई आवाज़, वह तर्ज़े-तक़रीर, एक-एक लफ़्ज़ इस क़दर पुर-असर था कि सीधे रूह की गहराइयों में उतर जाता था। शेख़ ने बेधड़क कहा कि दिल्ली का मौजूदा तख़्त-नशीन सुलतान अपने वालिद का क़ातिल है। गुनाहगार है। वो तो और भी जाने क्या-क्या कहना चाहते थे कि अवाम ने ग़ज़बनाक सूरत इख़्तियार कर ली। ग़ुस्से से अन्धे अवाम ने देखते-देखते आधे कानपुर को फूंक डाला।...अब बताओ जमाल, क्या शेख़ ने यह सब गढ़ के कहा ? उन्होंने जो कि...

मज़हबी : कहते हैं कि शेख़ साहब और सुलतान काफ़ी हम-शक्ल हैं।

बुज़ुर्ग : हाँ, पर यह नहीं कि सुलतान से हूबहू मिलते हों। फिर भी शेख़ के खड़े होने का अन्दाज़, रोब-दाब, दाढ़ी की बनावट, सब सुलतान की ही याद दिलाते हैं। जब भी शेख़, सुलतान को भला-बुरा कहने लगते तो ऐसा लगता, गोया सुलतान अपने-आपको कोस रहे हों !

शरीफ़ : हाँ, तभी तो ! तक़रीर का यह चस्का शायद शेख़

मोअज्ज़म से ही हमारे सुलतान को लगा होगा। मैंने तो अपनी ज़िन्दगी में पहली बार ऐसा तक़रीर करने वाला सुलतान देखा है।

अदालती दरबान दाखिल होता है।

दरबान : (हाकिमाना अन्दाज़ से) हाज़रीन, मुक़द्दमा ख़त्म हो चुका ! अब ये लफ़्ज़ी जंग बन्द कीजिए और यहाँ से चलते बनिए। जल्दी...।

सब चले जाते हैं, एक आज़म को छोड़कर।

दरबान : तू क्यों रुका है ? सुना नहीं क्या कहा ?

आज़म : सुन लिया साहब, सुन लिया। लेकिन वो बिरहमन देवता अभी बाहर क्यों नहीं तशरीफ़ लाए ?

दरबान : उससे तुझे क्या ? जा जा, बड़ा आया देवता का बच्चा !

आज़म बड़ी होशियारी के साथ परे सरकने का बहाना करता है और छुपकर एक किनारे खड़ा हो जाता है। थोड़ी देर बाद अदालत के दरवाज़े से ब्राह्मण झाँकता है, फिर अपने को महफ़ूज पाकर बाहर निकलता है। बग़ल में एक गठरी दबाये हुए है।

दरबान : ओह ! आखिर आप तशरीफ़ का टोकरा ले ही आए ! अब चलिए ! हाँ हाँ, यहाँ कोई नहीं, बेधड़क चले आइए। पहले हंगामा खड़ा करो, फिर खौफ़ खाते फिरो। बस बस, अब रास्ता नापो, मुझे भी काफ़ी परेशान कर दिया।

ब्राह्मण : अच्छा, अच्छा। मैं चला, नमस्कार।

दरबान : (नकल करते हुए) नमस्कार !

दरवाजा बंद कर दरबान चला जाता है। ब्राह्मण जाने को ज्योंही मुड़ता है, त्योंही पीछे से आकर आज़म उसकी गठरी पर हाथ मारता है। यकायक ब्राह्मण झपट कर गठरी में से खंजर निकाल कर एक ही झपट्टे में आज़म पर हमला करने पर आमादा हो जाता है।

आज़म : (झटके से पीछे हटकर, ब्राह्मण को घूरता हुआ) तू ! अज़ीज़ ! ...धत्तेरे की।

ब्राह्मण : (आगे बढ़कर) कौन ? आज़म !

आज़म : शुक्र है अल्लाह का। कैसा अजीब इत्तिफ़ाक़ है ! मुद्दत के बाद मुलाक़ात, वो भी दिल्ली में ! मगर यार अज़ीज़, तू बिरहमन कब से बना ?

अज़ीज : श्श...ख़ामोश।

आज़म : मुझे पहले ही शुबहा हो गया था। जो शख्स खुली अदालत में सुलतान से नाक रगड़वा सकता है, वह बाहर आने में क्यों शर्मिन्दगी महसूस कर रहा है ? ऐसे फ़ख्र के लायक़ काम के बाद भी यों लोगों से क्यों मुँह छुपा रहा है ? मैं भी पलत्थी मारकर बैठ ही गया कि आख़िर इस अजूबे का दीदार कर ही लूँ। हुं, देखा तो निकले अपने यार जनावे-आली अज़ीज़ !...मगर यार, तुझे इतना भी पता नहीं कि बिरहमान लोग गठरी में ख़ंजर छुपाके नहीं रखते ?

अज़ीज़ : (जल्दी-जल्दी ख़ंजर गठरी में दुबका देता है) श्श... ख़ामोश ! खामोश ! अगर कहीं मेरी बिरहमनीयत का राज़ फ़ाश हो गया तो मैं मारा गया। मगर तुम क्या कर रहे थे यहाँ ?

आज़म : जहाँ भी हो भीड़-भड़क्का, हाज़िर है ये चोर उचक्का ! देख लो न, आज की गाढ़ी कमाई। (रक़म दिखाता है)

अज़ीज़ : यानी, साहबज़ादे की बचपने की आदत अभी छूटी नहीं !

आजम : आदत नहीं यार, पेशा कहो पेशा। (गर्व से) इतनी रक़म उड़ाई ! मजाल है जो किसी को शक भी हुआ हो। और रक़म रखने के मुक़ामात भी सुनो...खुदा ने भी नहीं देखे होंगे। पगड़ी के तल्लों में, साफ़ों की सलवटों में, लांग की गाँठ में, आस्तीनों की चोर जेबों में। ख़ैर, मैं तो रहा बटमार का बटमार ही। तुम्हारा क्या शग़ल चल रहा है ? मामला तो बड़ा गहरा लगता है। खेड़े का धोबी, दिल्ली में बिरहमन ! लम्बा चक्कर होगा।

अज़ीज़ : श्श...किसी से कहना मत।

आज़म : नहीं कहूँगा लेकिन साझेदारी करनी होगी। साझा हो तो अपना मुँह बन्द ! वरना...।

दोनों पास के चबूतरे पर बैठते हैं।

: ख़ैर, पहले तुम्हारी कपट कहानी का बयान हो जाय...

अज़ीज़ : चन्द रोज़ हुए, मैं क़रीब के एक गांव में मैले-कुचैले कपड़े बटोरने गया हुआ था। बड़ी ख़स्ताहाली का दिन था।

न पेट में दाना, न जेब में कौड़ी, परीशान-सूरत गधे का बोझ लादे हम चले जा रहे थे। उसी वक़्त ढिंढोरे की आवाज़ से मेरे कान खड़े हो गए! हमारे सुल्तान की तख़्त-नशीनी की दूसरी सालगिरह पर शाही ऐलान हो रहा था, कि हक़-पसंद सुल्तान की तरफ़ से किसी भी रैयत पर कभी भी कोई ज़ुल्मो-सितम हुआ हो तो हाकिमे-अदालत से फ़रियाद करने की इजाज़त होगी। और फ़रियादी को सही इन्साफ़ मिलेगा। ग़रीब-ग़ुरबा, अमीर-उमरा कोई भी बिला ख़ौफ़ अपनी फ़रियाद अदालत में पेश कर दे। बस, मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त की मसल सुनी है न, मुझे अपने गाँव के विष्णु परसाद वाली वारदात याद आ गई, जिसकी ज़मीन को सुलतान के कारिंदों ने कभी ज़ब्त कर लिया था। फिर क्या—फ़ौरन मूँड मुंडा लिया और बन गया बिरहमन! नाम भी विष्णु परसाद ही बताया। फिर दूसरे ही दिन असली विष्णु परसाद से हम नक़ली विष्णु परसाद ने वह ज़मीन ख़रीद ली।

आज़म : हद हो गई! ज़ब्त की हुई ज़मीन की ख़रीदारी कैसे?

अज़ीज़ : यही सवाल उस अहमक़ परसाद ने भी किया था। मैंने उसे कहा...'तुम महज़ अपनी ज़मीन की मिलकियत मुझे बेच दो।' और दस अशर्फियाँ गिन के रख दीं सामने। ग़रीब का मुँह खुले का खुला रह गया। उसी हालत में मैंने उससे मिलकियत लिखा ली। सोचता होगा कि ज़मीन तो गई ही है, अशर्फियाँ क्यों छोड़ूं! बस, उसको खुला मुँह वहीं छोड़, उसी दिन दिल्ली दौड़ा आया और अपने इन्साफ़-पसंद सुलतान के ख़िलाफ़ नालिश ठोक दी।

आज़म : मगर ऐ ठगों के उस्ताद, अगर कहीं सुलतान को तुम्हारी इस कपट-कहानी का पता लग जाता, तो...

अज़ीज़ कंधा उचका देता है

: एक बात अब भी मैं नहीं समझा। आख़िर तुम बिरहमन ही क्यों बने?

अज़ीज़ : ज़ाहिर है। सुलतान को अपनी इन्साफ़-पसंदी और ग़ैर-जानिबदारी को साबित करना था, अपनी रिआया पर यह ज़ाहिर करना था कि हिन्दुओं के साथ भी बराबरी का सलूक बरतते हैं। अगर मैं मुसलमान होता तो सुलतान

इस सुनहरी मौक़े से महरूम रह जाते। सुलतान भी मुसलमान हो और फ़रियादी भी मुसलमान हो तो सुलतान को अपनी इन्साफ़-पसंदी और ग़ैर-जानिवदारी ज़ाहिर करने का मौक़ा कहाँ मिलता? अब एक विरहमन पर सुलतान की दरियादिली की वारिश हुई तो सुलतान खुश, अवाम दंग! क्यों, तुमने यहाँ इकट्ठे हुए लोगों की तरह-तरह की वातें नहीं सुनीं?

आज़म : वाप रे! वड़ा तिकड़मी दिमाग़ है तुम्हारा। ख़ैर, यह सव मैं समझ गया। मगर, यह वताओ, इसमें मेरी क्या साझे-दारी रहेगी?

अज़ीज़ : सुना है कि दिल्ली के अवाम को दौलतावाद रवाना करने के लिए सुलतान को वहुत मुलाज़िमों की ज़रूरत है। मुझे तो मुलाज़िमत मिल भी चुकी है...ख़ालिस हिन्दू हूँ न! अव तुम भी चलो मेरे साथ! विरहमन के साथ मुसलमान को देखकर भोले सुलतान भी वाग़-वाग़ हो जाएँगे।

आज़म : न वावा, मेरी तोवा ऐसी शाही मुलाज़िमत से!

अज़ीज़ : डरो नहीं, दोस्त! दिल मजवूत रक्खो! फिर देखो, दौलतावाद पहुँचते-पहुँचते तुम्हारे पास दौलत की रेल-पेल हो जाएगी।

आज़म : उसके वाद?

अज़ीज़ : वाद की वात वाद को। कल की फ़िक्र में आज दुवला होने की क्या ज़रूरत? चलो दोस्त।

दृश्य : 2

शाही महल। मुहम्मद शतरंज पर झुका हुआ बैठा है। सौतेली माँ दाख़िल होती है।

सौतेली माँ : मुहम्मद ! मुहम्मद !

मुहम्मद : ख़ूब मौक़े पर आ गईं अम्मीजान ! दो लम्हे पहले आ जातीं तो दुनिया के इल्मी खजाने का बहुत नुक़सान हो जाता।

सौतेली माँ : ऐसा क्या वाक़या हो गया, दो लम्हों में ?

मुहम्मद : मैं अभी-अभी इल्मे-शतरंज के एक अहम मसले का हल तलाश कर रहा था, जिसमें अल्-अदली, अस्सराबी जैसे पहुँचे हुए आलम भी नाकाम साबित हुए थे। अब मुझे वह हल मिल गया और किस क़दर आसान है !

सौतेली माँ : पर मैं क्या समझूँ, मुहम्मद ?

मुहम्मद : समझना चाहें तो समझ भी जाएँ। मगर समझने की चाह भी हो तो !

सौतेली माँ : (चिढ़कर) बेकार की बात मत करो ! मैं यहाँ शतरंज खेलने नहीं आई। इतनी ग़रज़ है तो बुलवा लो अपने शतरंजी दोस्त आईन-उल्-मुल्क को ! उसे बताओ अपना हल।

सहसा मुहम्मद ठहाके लगाता है।

मुहम्मद : बजा फ़रमाया, अम्मीजान, शतरंज की चाल चलनी है तो सिर्फ़ आईन-उल्-मुल्क के साथ ही।...लेकिन अब ऐसी ही सूरत पेश हुई है, अम्मी ! मगर मोहरे काठ के नहीं रहे। ज़िंदा फ़ौजी मोहरे बन गए हैं।

सौतेली माँ : कभी-कभी तो तुम पहेलियाँ बुझाने लगते हो, मुहम्मद।

मुहम्मद : (संजीदगी के साथ) हाँ, अम्मी, मेरा हमदम, शतरंज का दोस्त आईन-उल्-मुल्क मय-फ़ौज दिल्ली की तरफ़ रवाना हो चुका है।

सौतेली माँ : क्या ? क्यों मुहम्मद ?

मुहम्मद : (उदास होकर) पता नहीं अम्मी। तीन रोज़ से मग़ज़-पच्ची कर रहा हूँ, लेकिन अभी तक समझ नहीं पाया कि आख़िर मेरे जिगरी दोस्त ने बिला-वजह मेरे ख़िलाफ़ क्यों तलवार उठायी है ?

सौतेली मां : किसी बात पर अनबन तो नहीं हुई ?

मुहम्मद : अनबन कहाँ से हो, अम्मीजान ! आपको मालूम है कि मेरी तख़्त-नशीनी के दौरान, अवध की हालत किस क़दर ख़राब थी ! चारों तरफ़ लूट-मार, कत्लो-ग़ारत जारी थी। मैं इस सूरते-हालात से परेशान हो चुका था। मैंने आईन-उल्-मुल्क को वहाँ भेजा। और उसने जाते ही फ़सादियों का सफ़ाया कर दिया। उसके बाद हमने सुना है कि अवध की रिआया उससे इतनी ख़ुश है कि उसके नाम से दुआ माँगती है। जब दक्खिन में भी बग़ावत की आग भड़क उठी, तो मैंने उससे दरख्वासत की कि वह मेरी तरफ़ से दक्खिन जाए...और वहाँ भी अवध की-सी खुशहाली लाए। मैंने उसकी कुमुक के लिए अपनी आधी फ़ौज भी उसके पास भिजवा दी थी। तीन महीने हो गए। आज तक उसका कोई माक़ूल जवाब नहीं आया। तीन रोज़ हुए मेरे मुख़बिर का लिखा एक ख़त मिला जिसमें आईन-उल्-मुल्क की दग़ाबाज़ी की दास्तान दर्ज थी। लिखा था कि दिल्ली की तरफ़ कूच किए उसे आठ रोज़ हो गए हैं।

सौतेली माँ :-तो अब तुम क्या करोगे ?

मुहम्मद : करना क्या है ? बची-खुची फ़ौज लेकर उससे जूझना है।

सौतेली माँ : बची-खुची फ़ौज ?

मुहम्मद : हाँ, अम्मी, मेरे पास अब उसकी फ़ौज का आठवाँ हिस्सा भी नहीं है। (फिर एकदम हँसकर) देखो न, शतरंज के मसले का हल पाकर मैं किस क़दर खुश था, मगर तुमने आईन-उल्-मुल्क का ज़िक्र छेड़कर वह खुशी ख़ाक में

मिला दी। आपकी तशरीफ़-आवरी का सबब जानना तो मैं भूल ही गया।

सौतेली माँ : अब कोई ज़रूरत नहीं रही।

मुहम्मद : क्यों ?

सौतेली माँ : कोई ख़ास बात नहीं थी। दरअसल मैं यह जानना चाहती थी कि आजकल तुम किस चक्कर में हो। दिन चढ़े तक तुम्हारे कमरे में रोशनी रहती है। रात भर जागते रहते हो। आख़िर अपनी सेहत से ये दुश्मनी क्यों ?

मुहम्मद : (हैरानी के साथ) यानी आप समझती हैं कि मैं आईन-उल्-मुल्क की फ़िक्र में घुला जा रहा हूँ ? अम्मी जान, फ़िक्रमंदी या मुहब्बत की हालत में नींद न आने की बातें शायरों की ख़्याली उड़ान ही हैं। अगर मैं इतना फ़िक्रमंद होता तो शतरंज के मसले में कैसे उलझा रहता ?

सौतेली माँ : तो रात भर क्या करते हो ?

मुहम्मद : (नाटक के लहजे में) अल्लाह से दरख़्वास्त करता रहता हूँ कि या ख़ुदा, मुझे नींद न आए ! दिन तो यों ही दुनियावी शोरो-गुल में निकल जाता है। मगर ज्यों ही दिन का उजाला रुख़सत हो जाता है, रात की तारीकी को चीर कर मैं आसमान पार पहुँच जाता हूँ, और आसमान के सितारों के इर्दगिर्द मंडराया करता हूँ। फिर इब्न-अल्-मोतज़, दुर्रुम्मान जैसे बावक़ार शायरों का कलाम गुन-गुनाया करता हूँ। तब एकाएक दिल में यह ख़्वाहिश जागती है कि मैं अभी और इल्म हासिल करूँ, अभी और तरक़्क़ी करूँ, और ऊपर उठूँ, और...और...। फ़ौरन मेरे तसव्वुर में मेरी रिआया का साया उभरने लगता है, और मेरा जी फिर बेक़रार होने लगता है। जी होता है कि किसी ऊँचे दरख़्त पर चढ़ जाऊँ, और वहाँ से अपनी रिआया को आवाज़ दूँ, चीख-चीख कर उन्हें पुकारा करूँ—'ऐ मेरी अज़ीज़-तरीन रिआया, उठो, उठो, मैं तुम्हें आवाज़ दे रहा हूँ, तुम्हारी राह देख रहा हूँ...आओ, अपनी तमाम परेशानियाँ मुझे बताओ, मैं अपनी तमाम ख़्वाहिशें तुम्हें सुना दूँ, फिर हम सब एक साथ परवरदिगार की इबादत करें ! चाहे गला ही क्यों न सूख जाए, जिस्म टूट जाए, या ख़ून ख़ुश्क हो जाए। सुनो ! तारीख़ के नए लिखे जाने

वाले वरक़ अपने हैं। आओ, हम चिराग़ बनकर ज़िन्दगी को रोशनी दें। रात बनकर धरती की तमाम सरहदों को मिटा दें। आओ, मैं तुमसे गले मिलने के लिए बेचैन हूँ।' लेकिन ज़मीन में जड़ जमाए बिना सितारों में टहनियाँ कहाँ से फूटें? गुज़रे हुए सुलतानों के ज़ुल्मों की सतायी हुई रिआया में मुझे नई उम्मीदें जगानी हैं। दुखों से भरी ज़िन्दगी से उनकी हिफ़ाज़त करनी है। उनकी ख्वाहिशों और तमन्नाओं को अमली सूरत देनी है।...या खुदा, मेरे इतने सारे मनसूबे एक ही दौर में पूरे हो जाएँ! खुदा की अज़मत, रिआया की भलाई का ख्वाब और ज़ाती ख्वाहिशें ...जब तीनों में कशमकश हो रही हो, तो मुझे सोने का वक़्त कहाँ है अम्मी?

अब नाटक का लहजा छोड़कर बच्चों की तरह।

: मगर मेरी बेदारी की आड़ लेकर अपना पुराना राग न छेड़ना कि एक बेगम ले आओ, शादी करो और बाल-बच्चे पैदा करने में जुट जाओ।

सौतेली माँ : खुदा ही बचाए तुम्हारी बकबक से! मुसीबत में भी तुम्हें ख़ब्त ही सूझता है।

मुहम्मद : अम्मी, अब तक शतरंज के हर दाँव में मैंने ही आईन-उल्-मुल्क को मात दी थी! अगर कहीं इस बार वह जीत गया, और मैं लड़ाई में काम आ गया...

सौतेली माँ : मुहम्मद, खुदा के लिए ऐसे अलफ़ाज़ मुँह से न निकालो।

मुहम्मद : अगर इस लड़ाई में मुझे मरना ही है तो ज़िंदगी के आख़िरी आठ दिन क्यों फ़िक्र और परेशानियों में ख़राब करूँ? मुझे दुश्मन की नहीं, अपनी रिआया की फ़िक्र है।

सौतेली माँ : क्या गुज़रे सुलतानों को कोई फ़िक्र ही नहीं थी?

मुहम्मद : उनकी फ़िक्र दूसरी क़िस्म की थी। फिर उनके माथे पर ताज फबता भी नहीं था। और न खुद ताज उतारने की उनमें हिम्मत ही थी। नतीजा यह हुआ, जवानी में ही बेचारे बुढ़ापे का शिकार हो गए या (माँ को घूरता हुआ) मारे गए।

सौतेली माँ : (चीखकर) मुहम्मद!

मुहम्मद : क्यों, क्या हुआ?

सौतेली माँ : (हिचकती हुई) कुछ नहीं, कुछ नहीं।

मुहम्मद : (माँ को घूरता है, फिर सख़्त आवाज़ में) दो बरसों के बाद भी आपको उस ख़बर पर यक़ीन नहीं हुआ ?

सौतेली माँ : कौ...कौन, कौन-सी खबर ?

मुहम्मद : (ग़ुस्से को ज़ब्त करने की कोशिश का अन्दाज़, व्यंग्य से) कौन-सी खबर ! यही कि मैंने अपने वालिद और भाई को मौत के घाट उतरवा दिया और उनके क़त्ल से मैंने नमाज़ के वक़्त को नापाक कर दिया था।

सौतेली माँ : मैंने ऐसी अफ़वाहों पर कभी यक़ीन नहीं किया, मुहम्मद !

मुहम्मद : (भड़ककर) क्यों नहीं ? मेरी वालिदा को यक़ीन है, मेरे तमाम मुसाहिबों को है, तमाम अमीरों-वज़ीरों को है, तो सौतेली माँ को ही क्यों नहीं ?

सौतेली माँ : (चीखकर) नादान, मुझे सौतेली माँ समझते हो ?

दरबान दाख़िल होता है।

दरबान : सुलतान का इक़बाल बुलंद हो ! वज़ीरे-आज़म नजीब और वाक़या-नवीस ज़ियाउद्दीन बरनी हुज़ूर का न्याज़ हासिल करना चाहते हैं।

मुहम्मद : आने दो।

सौतेली माँ चेहरे पर नकाब डाल लेती है।
नजीब और बरनी अन्दर दाखिल होते हैं।

नजीब, बरनी : अल्लाह सुलतान को सलामत रक्खे !

मुहम्मद : तशरीफ़ लाइए ! अभी अम्मीजान हमसे एक बात पर बहस कर रही थीं। इस सिलसिले में आप दोनों की राय भी...

सौतेली माँ : मुहम्मद, शतरंज की अपनी नई खोज की तफ़सीलें इन्हें भी दो न !

मुहम्मद : (हँसकर) इन्हें सुनाने से क्या होगा ? बरनी रहा वाक़या-नवीस। वो तो सिर्फ़ माज़ी की हस्तियों के सायों के साथ ही शतरंज खेल सकता है। और सियासतदाँ नजीब को शतरंज खेलने के लिए चाहिए ज़िंदा शाह-वज़ीर। इन बेजान लकड़ी के टुकड़ों में क्या उसे मिलेगा ? इनके लिए एक आईन-उल्-मुल्क ही काबिल शख़्स है। (नजीब से) नजीब, इंतज़ाम कैसा है ?

नजीब : सब ठीक है हुज़ूर। तीन-चार नायब वज़ीरों ने अपनी टुकड़ियाँ भिजवाने का वादा किया है। लेकिन, फिर भी मुझे लगता है कि फ़ौज छः हज़ार से ज्यादा नहीं जुटेगी।

तीस हज़ार के मुकाबिले में सिर्फ छः हज़ार !

मुहम्मद : नाउम्मीद क्यों होते हो नजीव ? हमारी तरफ़ उसकी फ़ौज की तादाद से एक सिफ़र ही तो कम है। तुम्हें तो खुशी होनी चाहिए।

वरनी : फ़ौज ! कौन-सी फ़ौज ! कहाँ का इन्तज़ाम ? यह सब क्या है ख़ुदावंद ?

नजीव : (उसकी परवाह किए बिना) मगर मैं एक-दूसरे ही सिल-सिले में आया हूँ हुज़ूर, जिसका इन्तज़ाम अभी होना है।

मुहम्मद नजीब की तरफ़ देखता है।

: वली शेख़ इमामुद्दीन अव दिल्ली तशरीफ़ लाए हैं हुज़ूर।

मुहम्मद : वड़ी अच्छी खवर है। दिल्ली से रवाना होने से पहले शेख साहव से हम दुआ माँग लेंगे।

नजीव : शेख़ साहव की तरफ़ से लापरवाह न हों हुज़ूर।

मुहम्मद : लापरवाह ! कहा न कि हम उनका दीदार करेंगे। और सुना है कि शेख़ मोहतरिम हमारे हम-शक्ल हैं। तो हम अपनी ज़ाती शक्लो-सूरत का जायज़ा भी एक वार क्यों न ले लें !

नजीव : बंदा अर्ज़ करना चाहता है कि दीदार तो करें लेकिन काँटा भी निकाल दें।

वरनी : (दंग रहकर) किस क़दर खौफ़नाक सलाह दे रहे हैं, नजीव ! वह भी शेख़ इमामुद्दीन जैसे नेक-दिल शख्स के ख़िलाफ़ ?

मुहम्मद : (सब्र के साथ) क्यों नजीव ? उनसे किस बात का ख़तरा है ?

नजीव : दो महीने पहले ही मैंने हुज़ूर की खिदमत में अर्ज़ की थी कि शेख़ कोई मामूली हस्ती नहीं है। एक आग है उनकी आवाज़ में। वो अपनी तक़रीर से भोले-भाले लोगों को भड़काकर वग़ावत पर उकसाते हैं। कानपुर में उन्होंने जो तक़रीर की थी उसी का असर तो था कि अवाम ने तैश में आकर आधे कानपुर को ख़ाक कर डाला। शेख़ साहव बड़े वली और पाक-दिल इन्सान तस्लीम किए जाते हैं। मगर उनकी इस नेक-दिली से ही वाग़ियों की हरकतों को शह मिलती है। हुज़ूर, यक़ीन न हो तो वरनी साहव से सारा हाल मालूम कर लें।

मुहम्मद : मतलब ? बरनी, तुमने उनकी तक़रीर सुनी थी ?

बरनी : (झिझककर) हाँ। हुज़ूर, दो महीने हुए जब मैं दौरे पर था। लेकिन वज़ीर साहब को यह ख़बर कहाँ से मिली ?

नजीब : हम हुकूमत करते हैं। ऐसी बहुत सी तदबीरें हमें करनी होती हैं। आपको यहाँ हाज़िर होने का पैग़ाम इसीलिए दिया गया था।

मुहम्मद : (हँसकर) जहाँ वाक़या तारीखी हो, वहाँ वाक़या-नवीस पर कौन पाबन्दी लगा सकता है ? लेकिन बरनी ऐसी कौन-सी संगीन बातें शेख़े-मुहतरम ने फ़रमाई हैं जो तुम छुपाना चाहते हो।

बरनी जवाब नहीं दे पाता।

नजीब : हमें ख़बर मिली है कि हुज़ूर सुल्तान पर शेख़ साहब ने इल्ज़ामों की बौछार कर रक्खी है। उनका कहना है कि सुलतान की तख़्त-नशीनी के बाद दीनो-ईमान ग़ारत हो गया है। सुलतान बहुत लोगों के गुनहगार हैं। उन्होंने नमाज़ के वक़्त अपने वालिद और भाई को क़त्ल करवा कर संगीन जुर्म किया है, और पाक इबादत को नापाक किया है।

मुहम्मद : (सख़्ती के साथ) क्या यह सच है, बरनी ?

बरनी : (सर झुकाए ही) हाँ ख़ुदावन्द !

मुहम्मद : तो क्या वह बेमानी किस्सा अब मजमे-मजलिसों में भी छेड़ा जाता है ?

बरनी : ऐसी मामूली-सी बात पर परेशान न हों, ख़ुदावंद !

मुहम्मद : (फूटकर) मामूली-सी बात ? मैंने वालिद का क़त्ल किया, यह मामूली-सी बात है ? नमाज़ के वक़्त को मैंने नापाक किया, क्या ये भी मामूली-सी बात है ? बरनी, लोग क्या कहते हैं इसकी मुझे परवाह नहीं है। मुझे डर लगता है उनकी ग़लत ज़हनियत से। अगर उन्हें दीनो-ईमान की फ़िक्र होती तो मुझे कोई एतराज़ न होता, या मेरे वालिद से ही उन्हें कोई ख़ास लगाव होता तो भी मैं उज्र नहीं करता। मगर उन सबको महज़ मुझसे अदावत और नफ़रत है। मेरी वालिदा, जिसकी कोख से मैं पैदा हुआ हूँ, जो मेरे वालिद से सख़्त परहेज़ रखती थी, वो भी मुझ से ख़फ़ा है। किसलिए ? इसलिए कि वालिद के साथ

भाई भी मर गया। कमज़ोर भाई! अगर मैं मर जाता और वह बचा रहता तो उँगलियों के इशारे पर नचाया जा सकता था। मगर मैं बच गया...मैं ज़िद्दी ज़िन्दा रह गया। बस, अब इसी गुनाह के लिए वालिदा मेरा मुँह तक नहीं देखतीं। वो ही क्यों, मुझ पर ममता लुटाने वाली ये सौतेली माँ भी उस शको-शुबहा से पाक नहीं!

थोड़ी देर तक खामोशी छाई रहती है।

नजीब : हुज़ूर, आख़िर शेख़ मुअज्ज़म के बारे में क्या हुक्म है?

मुहम्मद : **(मज़ाकिया ढंग से)** हुक्म क्या है! उनकी आग बरसाने वाले तक़रीर दिल्ली में भी होने दो। सबसे आगे हमीं बैठकर उनकी तक़रीर सुनेंगे। बाक़ी फिर देखा जाएगा।

नजीब : हुज़ूर, पहले से ही हम ख़तरों से घिरे हुए हैं। यह मज़ाक का वक़्त नहीं है। ऐन मौक़े पर मुनासिब कार्रवाई नहीं की गई तो जानते हैं अंजाम क्या होगा? शेख़ साहब से रिआया की अक़ीदत गहरी होती जाएगी और उनकी पाक-दिली यहाँ भी अपना करिश्मा दिखाने लगेगी। दिल्ली में भी कानपुर-वाली वारदात दुहराई जाएगी। फिर वही दंगे, फ़साद, बगावत का सिलसिला शुरू हो जाएगा। हुज़ूर! दारुल-सलतनत दिल्ली में बग़ावत हो जाएगी। मुस्तक़बिल की यह तस्वीर कितनी ख़ौफनाक है!

बरनी : नहीं, वज़ीरे-आज़म। सुलतान ने ख़ुद ऐलान कर रक्खा है कि कोई भी आकर बिला-ख़ौफ़ सुलतान की नुक्ताचीनी कर सकता है, अगर किसी के साथ ज़ुल्म हुआ हो तो उसका जवाब देने के लिए भी खुदाबंद हमेशा तैयार हैं। अब इन ऐलानों की सच्चाई को साबित करने का इससे बढ़िया मौक़ा फिर कब मिलेगा? मैं यक़ीनन कहूँगा कि रिआया हमारे सुलतान की दरिया-दिली और इन्साफ़-पसंदी तहे-दिल से क़द्र करेगी।

नजीब : सियासत में ये दरिया-दिली, ये इन्साफ-पसंदी, सब बेकार की बातें हैं। यहाँ मतलब की चीज़ एक ही है, बरनी साहब...हुकूमत की ताक़त!

बरनी : तो आपका ख्याल है कि दुनिया में ईमान की हुकूमत नामुमकिन है? लेकिन ज़रा तवारीख़ पर ग़ौर फ़रमाइए...रसूलिल्लाह के पाक पैग़ाम में अब भी ईमान

की हुकूमत क़ायम करने की ताक़त और क़ुव्वत है।

नजीब : मगर अब तक तो शमशीर की बदौलत ही क़ायम हो पाई है।

बरनी : मानता हूँ, मगर तवारीख दिन-ब-दिन बढ़ती रहती है, वज़ीरे-आज़म। ये ज़रूरी नहीं कि शमशीर की क़ायम हुई हुकूमत कभी भी दीनो-ईमान का रास्ता अख्तियार नहीं करेगी। लेकिन आप समझ नहीं सकते। आपके बचपन की हिन्दू तबीयत ने आपके ख्यालात को एकदम नाक़िस कर दिया है।

नजीब : आपको मालूम है कि मैंने हिन्दू मज़हब को क्यों तर्क किया था ? नहीं न ! हिन्दू फ़लसफ़े में मुझे दुनिया की भलाई का कोई सहल रास्ता नज़र नहीं आया। वह सिखाता है शख्सी निजात का रास्ता और दुनियादारी से गोशा-नशीनी ! मगर इस दुनिया की जिंदगी को कैसे भुला दिया जा सकता है ? अलावा इसके मैंने बचपन में हर तरफ़ अफ़रा-तफ़री और तबाही ही पायी। अपने आसपास के बेबस लोगों के लिए एक खुशहाल दुनिया बनाने की उम्मीदें लेकर मैंने इस्लाम क़बूल किया था। मेरा ख्याल था कि इस्लाम ही हक़ीक़ी तरक़्क़ी का इल्म है। दुनिया के लोगों की खुशी को वह बहिश्त में तलाश करने की कोशिश नहीं करता, बल्कि इसी दुनिया में ही वह खुशी खोज लाने का दावा करता है। मगर अब चीज़ें साफ़ हो गईं। सुनहरा दौर इस दुनिया में कभी क़ायम नहीं हो सकता, बरनी। यहाँ हैं सिर्फ चंद लम्हे जो हम जी रहे हैं ! बस, इन पर से हमारी गिरफ़्त ढीली न पड़े।

मुहम्मद : अब मुझसे क्या उम्मीद करते हो, नजीब ?

बरनी : उन्होंने बात साफ़ कर दी है, हुज़ूर। वो शेख साहब की मौत के ख्वाहिशमंद हैं। उन्हें क़त्ल कराना चाहते हैं।

नजीब : जी नहीं, क़त्ल करवाने से उन्हें शहादत का रुतबा मिल जायेगा। फिर मरे हुए को क्या मारना ! उस हालत में आईन-उल्-मुल्क का मुक़ाबिला करने की बजाय उसकी पनाह में ही जाना बेहतर होगा।

बरनी : (**समझ न पाकर**) आईन-उल्-मुल्क ? उसका मुक़ाबिला किसलिए, हुज़ूर ?

मुहम्मद : अब ऐसी ही नौबत पेश हुई है, बरनी। हमारे बचपन का दोस्त आईन-उल्-मुल्क दिल्ली पर धावा बोलने का मनसूबा लिए आ रहा है। हम से कई गुना ज़्यादा फ़ौज लेकर वह हमारी तरफ़ आ रहा है।

बरनी : नहीं खुदावंद, मुझे यक़ीन नहीं आता।

नजीब : (चिढ़ाते हुए) तो क्या, फ़ौज लेकर वह मेला देखने आ रहा है।

बरनी : लेकिन, लेकिन...उसने ऐसा क्यों किया हुज़ूर ?

मुहम्मद : वो ही जाने ! अपने आखिरी ख़त में मैंने उसे दक्खिन जाने के लिए लिखा था। कुमक के लिए अपनी फ़ौज भी भिजवायी थी। अब हमारी ही फ़ौज के बूते हमीं पर हमला करने का इरादा किया है। अब बची हुई फ़ौज को लेकर हम कन्नौज में उसका मुक़ाबिला करेंगे।

बरनी : खुदा के लिए आप जल्दबाज़ी न करें, हुज़ूर। आप आईन-उल्-मुल्क की तबियत और फ़ितरत से वाक़िफ़ हैं। वह दग़ाबाज़ नहीं हो सकता। वह तो सीधा-साधा नेकदिल शख़्स है। आपका दोस्त है।

मुहम्मद : (जज़्बात को दबाते हुए) अगर किसी दूसरे मौक़े पर वह ऐसी हरकत करता, तो शायद हमारा एतिक़ाद नहीं डगमगाता। लेकिन, ऐसे नाज़ुक वक़्त पर, जब कि हम दौलताबाद जाने की तैयारी में हैं, उसकी इन हरकतों का क्या मक़सद है ? क्या वह यह नहीं जानता कि हमारे जाने से पहले दक्खिन में अमन क़ायम होना बहुत ज़रूरी है ? उसी पर हमारे तजुर्बे का दारोमदार है।

बरनी : शायद उसे ग़लतफ़हमी हुई हो, हुज़ूर। आप ज़रा सब्र कीजिए। क़ासिद भेजकर हालात का जायज़ा लीजिए। मैं खुद उसके पास जाऊँगा, हक़ीक़त जानने की कोशिश करूँगा। आईन-उल्-मुल्क हम दोनों का दोस्त है। सुलह से इनकार नहीं करेगा।

नजीब : सुलह से क्या हासिल होगा, हुज़ूर ? सूरते-हाल बहुत संगीन है। इधर शेख़ साहब हैं। अगर उनको यों ही छोड़ दिया गया तो दिल्ली में भी दंगा-फ़साद यक़ीनी है। और उधर सुलह की गई तो यही समझा जाएगा कि सुलतान आईन-उल्-मुल्क से खौफ़-ज़दा है। हुज़ूर, आप

वरनी साहब की बातों में न आएँ। यह तो अपनी मौत आप बुलाने जैसा होगा। ऐसा नहीं हो सकता। अब तो शेख़ साहब और आईन-उल्-मुल्क दोनों से छुटकारा हासिल करना ही होगा, ताकि सुलतान के बुलन्द इरादों को कोई चुनौती न दे सके। तख़्ते-शाही के ख़िलाफ़ उठने वाले बाग़ी सिरों को बेमुरव्वती से कुचल दिया जाएगा।

वरनी : यह समझे बिना ही कि आख़िर आईन-उल्-मुल्क ने ऐसा सलूक क्यों किया ?

नजीब : वह तो ज़ाहिर है।

सौतेली माँ : क्या कह रहे हैं, नजीब ?

नजीब : अवध के लोग अब आईन-उल्-मुल्क को अपना सरपरस्त मानते हैं। उसके लिए वो जान क़ुरबान करने को तैयार हैं। ऐसी हालत में जब आईन-उल्-मुल्क को सुलतान की तरफ़ से दक्खिन जाने का फ़रमान मिला, तो उसे शुबहा हो गया कि उसकी मक़बूलियत से सुलतान घबरा गए हैं, और हसद की वजह से वे उसको दूर दक्खिन भेजकर उस से छुटकारा हासिल करना चाहते हैं। इसके बाद जब दिल्ली की आधी फ़ौज भी अवध पहुँच गई, तो उसका शुबहा और मज़बूत हो गया। मैंने तो उसी वक़्त हुज़ूर से अर्ज़ की थी कि फ़ौज अभी न भिजवाई जाए।

मुहम्मद : हमें यह बातें पहले से क्यों नहीं सूझीं !

वरनी : आपको भले ही न सूझी हों, हुज़ूर। मगर वज़ीरे-आज़म को हर बात का इल्म था। फिर भी उन्होंने इस बात को पोशीदा रखा।

नजीब : ज़ाहिर करने का मौक़ा मिलता तो ज़रूर करता। फिर भी आप जैसे तारीख़-नवीस को एक बात जता देना ज़रूरी समझता हूँ बरनी साहब, कि सियासत में गहरी दोस्ती का यही हक़ होता है।

बरनी : आख़िर यह अदावत किस लिए, वज़ीरे-आज़म ?

नजीब : अदावत नहीं, पेशबन्दी है। सियासत की बुनियाद ही पेशबन्दी पर क़ायम है। हम सबको शक की नज़र से देखते हैं।

सौतेली माँ : इसका मतलब यह हुआ कि सुलतान भी शको-शुबहा से

बरी नहीं है।

नजीब : गुस्ताख़ी माफ़ हो, बेगम साहिबा। मैं तख़्तेशाही का वफ़ादार पहले हूँ। एक बार जो ग़लती हो जाए वह दुबारा न दोहराई जा सके, यही मेरी वफ़ादारी की कसौटी है।

सौतेली माँ : (सख़्त आवाज़ में) इतनी मजाल ! मुहम्मद ! ऐसे गुस्ताख़ शख़्स के साथ कभी रियायत नहीं बरतनी चाहिए।

मुहम्मद : यह बात हम पर छोड़ें अम्मीजान। नजीब, तुम्हारी राय में हमें क्या करना चाहिए ?

नजीब : एकदम तो कुछ भी अर्ज़ नहीं कर सकता, हुज़ूर फिर भी एक बात है।

मुहम्मद देखता है।

: शेख़ साहब आपके हम-शक्ल हैं, इसे भूलिएगा नहीं।

मुहम्मद घूरकर नजीब को देखता है।

बरनी : शेख़-मोहतरम से इस मामले का क्या वास्ता है ?

मुहम्मद : बरनी, आईन-उल्-मुल्क हमारा शतरंजी दोस्त है। अब जान की बाज़ी लगाकर उसके साथ शतरंज खेलनी होगी। नजीब, शेख़ साहब को इसी वक़्त हमारी तरफ़ से दावत भिजवा दो। परसों शाम को बड़ी मस्जिद के सामने सहन में अज़ीमुश्शान मजलिस होगी। सारे शहर में मुनादी करवा दो कि दिल्ली का हर बाशिंदा मजलिस में हाज़िर हो। उस दिन शेख़ साहब अवाम के सामने अपनी जोशीली तक़रीर करेंगे। उन्हें इस बात की इजाज़त होगी कि हमारे मुताल्लिक़ वो जो चाहें कहें, जी भरकर भला-बुरा कहें, फटकारें, लानत भेजें, बद-दुआ दें। हम खुद हाजिर होकर वह तक़रीर सुनेंगे। तुमको याद रहे नजीब, उसी रात को हमें कन्नौज के लिए कूच की तैयारी भी करनी है, फ़ौज को आरास्ता रखा जाए।

सौतेली माँ : तुम्हारी ग़ैर-हाज़िरी में दिल्ली में कौन रहेगा, मुहम्मद ?

मुहम्मद : क्यों ? वज़ीरे-आज़म जो हैं। इसके अलावा हमने संपन शहर के अमीर के साहबज़ादे शहाबुद्दीन को भी कहला भेजा है। दो-तीन दिनों में वह यहाँ पहुँच जाएगा।

सौतेली माँ : ऐसा क्यों ? दिल्ली में अमीर-उमराओं की कमी है क्या ?

मुहम्मद : (हँसकर) नहीं, यह बात नहीं। संपन शहर का अमीर

हममें कुछ बदगुमान हो रहा है। अब उसी के साहबज़ादे को बुलाकर उसको अपने हक़ में कर लेना चाहते हैं।

बरनी : यह किस लिए, हुज़ूर ?

मुहम्मद : अगर मेरा खेल तुम्हें पसंद नहीं है, तो मुझे माफ़ करो, बरनी। लेकिन मेरे लिए दूसरा रास्ता ही नहीं है। आपका क्या हुक्म है अम्मीजान ?

सौतेली माँ : मुहम्मद, मैं बरनी साहब के साथ कुछ मशविरा करना चाहती हूँ। थोड़ी देर के लिए वो यहाँ रहें।

मुहम्मद : ख़ुशी से

मुहम्मद और नजीब चले जाते हैं

सौतेली माँ : शरीफ़ बरनी, समझ नहीं पा रही हूँ... किस तरह से आपसे बयान करूँ। अपने ही बेटे के खिलाफ़ कुछ कहना भी तो...

बरनी : बन्दे पर भरोसा करें, बेगम साहिबा !

सौतेली माँ : हमें मालूम है, शरीफ़ बरनी, तभी आपसे रुकने की दरख्वास्त की थी। (रुककर) आप मुहम्मद के मिज़ाज से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। वो इस क़दर ज़हीन, आलिम-फ़ाज़िल और जफ़ाकश है कि सब उसे बेनज़ीर तस्लीम करते हैं। लेकिन साथ ही वह इंतिहाई दर्जे का हस्सास और जज़्बाती भी है। कभी-कभी पागलों की-सी हरकतें कर बैठता है। अगर किसी वजह से वह दुःखी हो जाय या ख़फा हो जाय तो कोई बता नहीं सकता कि पलभर में वो क्या क़यामत बरपा कर दे। ऐसे शख्स के साथ आप जैसे सजीदा-मिज़ाज और धीरज के शख्स का होना ज़रूरी है। शरीफ़ बरनी ! वादा कीजिए, आप किसी भी हालत में...

बरनी : सुलतान के साथ रहा करूँगा। आप बेफ़िक्र रहें। आपने मुझ बन्दे पर जिस यक़ीन से यह ज़िम्मेदारी सौंपी है, उसकी मैं तहे-दिल से क़द्र करता हूँ। यह आपकी ज़र्रा-नवाज़ी है, और मेरी ख़ुशनसीबी।

सौतेली माँ : (बातों की परवाह किए बिना) अब देखिए न, पता नहीं, आईन-उल्-मुल्क और शेख़ इमामुद्दीन के बहाने क्या करने पर आमादा है ?

बरनी : गुस्ताख़ी माफ़ हो, बेगम साहिबा, नसीहत करने वाला मैं कौन हूँ, फिर भी आपकी मेहरबानी के भरोसे छोटी-सी

अर्ज़ करना चाहता हूँ। वज़ीरे-आज़म से मुझे कोई रंजिश नहीं, फिर भी सुलतान पर उनका जो असर है उसके ख़्याल से कभी-कभी मेरी रूह काँप जाती है।

सौतेली माँ : (पूरी कड़वाहट के साथ) मालूम है मुझे...चन्द रोज़ और इंतज़ार करूँगी...लेकिन अगर बात बरदाश्त की हद से बढ़ गई तो उसकी ऐसी दुर्गत करूँगी कि ख़ुदा भी उसे पनाह नहीं देगा।

बरनी, जो अभी-अभी बेगम साहिबा की इनायत से अपने आपको खुशनसीब समझ रहा था, बेगम के इन भयानक इरादों से एकदम चौंक पड़ता है।

ढिंढोरची : सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदो! हुज़ूर-आला शाहे-शाहान, वालिए-जहान का ताज़ा फ़रमान सुनो।
आज शाम को, नमाज़ के बाद, वहीं मसजिद के सामने वसी सेहन में एक ख़ास जलसा होगा। इस जलसे में बंगाल के शेख़ इमामुद्दीन, हिन्दुस्तान के आली मर्तबा बुज़ुर्ग, लोगों को ख़िताब करेंगे। अवाम को अपने पाक ख़्यालात से नवाज़ेंगे, इन्साफ़-पसंद सुलतान के तर्ज़े-अमल का मुफस्सिल तफ्सिरा पेश करेंगे। बादशाह सलामत से सरज़द हुई ग़लतियों, जुल्मों और मज़हबी बेक़ायदगियों का पूरा जायज़ा लेंगे। शेख़ की रहनुमाई हासिल करने के इरादे से नेक-दिल सुलतान बज़ाते-खुद वहाँ मौजूद रहेंगे। शाही हुक्म है कि दिल्ली का हर खासोआम इस जलसे में बिला खटके शरीक हो और शेख़ की नसीहतों से फ़ैज़ हासिल करके अपनी ज़िंदगी को सही तरीक़े से ढालने की कोशिश करे। सुनो, सुनो शहर दिल्ली के बाशिंदो, सुनो...

दृश्य : 3

मसजिद के सामने का सेहन। मुहम्मद और शेख़ ऊँचे चबूतरे पर गद्दियों के सहारे बैठे हैं; दोनों शक्लो-सूरत में एक जैसे हैं। किनारे पर दो-तीन सिपाही हथियारों से लैस खड़े हैं।

मुहम्मद : अभी तक कोई नहीं आया।

शेख़ : हमसे ज़्यादा आप बेसब्र मालूम होते हैं, सुलतान। कोई नहीं आया तो आपको खुश होना चाहिए।

मुहम्मद : नहीं शेख़, ऐसी बात होती तो अपनी तरफ़ से मुनादी न करवाते। हम कोई वली नहीं हैं कि आपके दिल की बातें जान पाएँ। हम यह जानने के लिए बेक़रार है कि हमारे मुताल्लिक़ आपके क्या ख़्यालात हैं।

शेख़ : मुमकिन है कि मेरी तल्ख़ बातें सुनने पर आपकी ये बेक़रारी सर्द पड़ जाए। क्योंकि मैं ऐसा शख़्स नहीं हूँ कि आपकी मौजूदगी से खौफ़-ज़दा होकर शीरीं-ज़बाँ बन जाऊँ!

मुहम्मद : हमें मालूम है, शेख़। आपकी साफ़गोई की शोहरत पहले ही दिल्ली पहुँच चुकी है।

ताली बजाकर एक सिपाही को बुला लेता है।

: वज़ीर साहब को हमारा हुक्म सुना दो कि वो अपने तमाम मुसाहिबों के साथ यहाँ अभी हाज़िर हों, और शहर के सारे अमीर-उमरा भी यहाँ फ़ौरन मौजूद हों।

शेख़ : नहीं सुलतान, हम इस हुक्म की मुख़ालिफ़त करते हैं। हुक्म के ज़ोर से हाज़िर होने वाले तमाशाई हमें नहीं चाहिएँ।

मुहम्मद : तो कब तक इंतज़ार किया जाए? हमें चाहिए था कि आज दरबार में ही सबको यहाँ हाज़िर होने का हुक्म दे देते। तब ऐसी सूरत पेश नहीं आती। ऐसी बदतमीज़ी क्यों? एक भी बंदा इस जलसे में शरीक नहीं हुआ।

शेख़ : (हँसता है) कहते हैं कि हमारी शक्लो-सबाहत आपसे मिलती है, मगर मिज़ाज और फ़ितरत में किस क़दर फ़र्क़ है! अगर आपके हुक्म से ग़ुलाम ही आपके जलसे में आने वाले हों, तो मेरा यहाँ तक आने का मक़सद ही ख़त्म हो जाएगा। मुझे ऐसे अवाम चाहिए जिनमें क़ुव्वते-फ़ैसला हो, जो आपकी हुकूमत का तख़्ता ही उलट दें।

मुहम्मद सिपाही को वापस जाने का इशारा करता है

मुहम्मद : मुमकिन है कि हमने कभी नासमझी की हो। लेकिन हमारा दावा है कि हमने अपना फ़र्ज़ अदा करने में लापरवाही कभी नहीं बरती।

शेख़ : इतना घमण्ड आपको ज़ेब नहीं देता, सुलतान। क़ुरान-शरीफ़ में बताए हुए क़ायदों को आपने तोड़ा है। अगर आप क़ुरान-शरीफ़ की पाक आयतों के मायने नहीं जानते तो इमामों, सैयदों और आलिमों से दरियाफ़्त करना चाहिए था, और उनकी बातों की ताज़ीम करनी चाहिए थी। लेकिन आपने ग़ैर-जानिबदारी और इंसाफ़-पसंदी की आड़ में न जाने कितने इमामों, सैयदों और आलिमों को मौत के घाट उतार दिया है।

मुहम्मद : मगर मज़हब का दायरा छोड़कर उन लोगों ने सियासत में दख़ल देने की जुरअत की थी। मज़हब को मेरी सियासत से क्या वास्ता? मुअज़्ज़म! जब कभी मायूसी की कैफ़ियत मेरे वजूद पर हावी हो जाती है, तब दीन की रोशनी ही मुझे तस्कीन दे पाती है। अपनी ज़िंदगी में मैं बिल्कुल अकेला हूँ, मोहतरम! यहाँ ईमान ही मेरा रहनुमा है। लेकिन मेरी सलतनत महज़ मेरी नहीं है— रियाया की भी है। हाँ, वहाँ गंदगी ज़रूर है। मगर जब

इन्सान की पैदा की हुई गंदगी को साफ़ करना है, तो अल्लाह का नाम लेकर क्यों चीखूँ ?

शेख़ : क्योंकि वही कारसाज़ है। अल्लाह का पाक-कलाम ही दुनिया की ग़िलाज़त को साफ़ करने में मददगार साबित हुआ है। (आवाज में नरमी लाते हुए) सुलतान ! सात सौ साल से अहले-अरब तब्लीग़े-इस्लाम में मसरूफ़ रहे हैं। अब वह क़ौम थक चुकी है। लेकिन तारीख़े-इस्लाम की जो बुनियाद उसने रखी है, उसी से अब हमें सुनहरा दौर लाने की कोशिश करनी है। और इसे अंजाम देने के लिए एक आलीक़द्र शख़्स की ज़रूरत है। ख़ुदा का करम है कि उसने आपको तमाम हुनर बख़्शे हैं। रोशन दिमाग़ी, क़ुव्वते-बाज़ू, शाही इक़्तदार जैसी आलातरीन ख़ूबियों से आप मालामाल हैं। क्या ख़ुदा की इन इनायतों का आप सिला नहीं देंगे ?

मुहम्मद : घुटनों के बल रेंगकर फ़ासला तय नहीं किया जाता, शेख़ साहिब ! घुटनों के बजाए मैं पंखों पर चलना चाहता हूँ।

शेख़ : इतना ग़रूर अच्छा नहीं, सुलतान ! आपका यह सोचना ग़लत है सुलतान कि आपको अल्लाह के पैग़ाम के अलावा भी इल्म हासिल हुआ है। ऐसी नादानी से बाज़ आइए ! आप इन्सानियत की हद पार करके ख़ुदा बनने की कोशिश में हैं।

मुहम्मद : वह काफ़िर हो जो ख़ुदा बनने की कोशिश में हो। मैं परवर-दिगार का नाचीज़ ग़ुलाम हूँ।

शेख़ : ग़ुलामों ने भी अक्सर आक़ा बनाने की जुरअत की है, सुलतान।

मुहम्मद : आपका तंज़ मैं समझता हूँ, मुअज़्ज़म ! मेरे दादा ग़ुलाम थे। मेरे वालिद सुलतान हो गए। मगर यह सियासत का खेल है, शेख़ साहिब।

शेख़ : मज़हबी और सियासी वजूदों को मुख़्तलिफ़ मानकर आप बज़ाते-ख़ुद एक कशमकश को दावत दे रहे हैं सुलतान, अगर कशमकश बढ़ गई तो इनमें से एक को यक़ीनन ख़त्म होना पड़ेगा।

मुहम्मद : (बड़ी विनम्रता के साथ) मगर इस बढ़ती हुई कशमकश को कैसे समझ सकूँगा शेख़ ? मुझे याद है, जब मैं यूनान

और चीन के फ़लसफ़ियों की दानाई पर दिन-रात ग़ौर किया करता था, ज़हर पीकर आबे-हयात अता करने वाले सुकरात, आला शायरी करने वाले अफ़लातून को जब याद किया करता था तो मुझे एक अनजानी मसर्रत का एहसास हुआ करता था, इस दुनिया को भूल जाता था। अब उस खोई हुई ख़ुशी को याद करता हूँ तो फिर नादान बचपन में लौटने को जी चाहता है। शायद अब मैं दौलते-इल्म से आहिस्ता-आहिस्ता महरूम होता जाऊँगा। और जो मेरे भीतर जज़्ब हो चुका है उसकी बदौलत अपने ज़मीर का गला भी घोंटता जाऊँगा। मौजूदा कशमकश से अब मुझे कोई निजात नहीं दिला सकता। मगर इस कशमकश से अपनी सलतनत को ज़रूर बचा सकता हूँ। इसलिए मुझे सिर्फ़ अपने आपका ही पूरा भरोसा करना होगा।

शेख़ : (मुहम्मद की इन बातों से पुर-असर होकर, फिर ज़रा रुककर) वाक़ई आपकी दानिशमंदी बेनज़ीर है, सुलतान। आप शायद इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी का बोझ उठा लें, लेकिन आपके बाद जो तख़्त-नशीन होगा, उसमें यह सिफ़त कहाँ से आएगी? आप जैसा ज़हीन शख़्स और कहाँ मिलेगा? कहाँ हैं आपके दिखाए हुए रास्ते पर चलने वाले जाँ-नशीन?

मुहम्मद : कहीं नहीं। इस सेहन की मानिंद सब सूना है।

शेख़ चौंककर चारों ओर देखता है।

: मुअज़्ज़म, हमने सुना था कि आपकी जोशीली तक़रीर सुनकर कानपुर के अवाम इस क़दर बरहम हुए कि बग़ावत की मशाल लेकर उन्हीं ने हमारे हाकिमों की क़यामगाहों को जला डाला। मगर आज दिल्ली में... मसजिद के इस वसी सेहन में, एक परिन्दा भी नहीं फटका। ऐसा क्यों हुआ?

शेख़ जवाब नहीं दे पाते हैं।

: शेख़-मुअज़्ज़म की तक़रीर की जब शाही मुनादी कराई गई, तो अहले-दिल्ली का माथा ठनका। सियासत की करामात! दिल्ली के लोगों को आपकी सदाक़त और ईमानदारी पर शुब्हा हो गया कि आख़िर जो शख़्स

सरे-आम सुलतान की नुक्ताचीनी करेगा, उसके लिए सुलतान की तरफ़ से क्यों मुनादी करायी गई ! इस अनोखे तरीक़े ने सबको खौफ़ज़दा कर दिया। उनको एहसास होने लगा कि हो न हो, यह तो सुलतान के दुश्मनों को खोज निकालने की एक महज़ चाल है और इस चाल में हज़रत की हैसियत भी एक मुहरे की है।

शेख़ : (हैरान होकर) तो क्या पहले से आप इस अंजाम से वाक़िफ़ थे ?

मुहम्मद : नहीं, लेकिन क़यास था, तभी हमने यह तजुर्बा किया।

शेख़ : तजुर्बा ! लेकिन अब मेरा क्या हश्र होगा ? अब क़यामत तक यह शक मेरे पीछे लगा रहेगा। भोले-भाले अवाम जो अब तक मुझे अक़ीदतमंदी से देखते थे, अब मुझे आपका कठपुतला समझेंगे ? क्या आपको इस बात का इल्म नहीं था कि आप मेरी ज़िंदगी, मेरी हैसियत को इस तरह तबाह करने जा रहे हैं ?

मुहम्मद : मुझे इल्म था। लेकिन आपको भी आज एक नया तजुर्बा हुआ न ! दीनो-ईमान की ख़ातिर जो शख़्स अपनी ज़िंदगी वक़्फ़ कर चुका हो, महज़ इस एक हादसे से उसकी सूरते-हाल इस क़दर बिगड़ जाए...तो इसे क्या कहा जाए ? अब आप जान गए होंगे, आमो-ख़ास की मज़हबी अक़ीदत की जड़ें किस क़दर कमज़ोर हैं ! अवाम का भोलापन फ़ितरती तौर पर शुबहा और वहम से वाबास्ता होता है मोहतरम ! पिछले सुलतानों ने अवाम को कुचले जाने वाले कीड़े और अहमक़ ही तस्लीम किया था। मैं इस रविश को बुनियादी तौर पर बदलना चाहता हूँ, हज़रत।

दो लम्हे के लिए सन्नाटा छाया रहता है।

शेख़ : आपका तजुर्बा कामयाब रहा, सुलतान। ख़ूब सबक़ दिया मुझे आपने। अब इसी सबक़ को अमली सूरत देने की कोशिश करूँगा। ख़ुदा हाफ़िज़ ! (चलते हैं)

मुहम्मद : कहाँ जा रहे हैं शेख़ इमामुद्दीन ?

शेख़ : आपकी हुकूमत की बद-इंतज़ामी को दूर करने के इरादे से मैंने मौजूदा राहे-अमल को इख़्तियार किया था। लेकिन आज मैं बिलकुल नाकारा साबित हुआ।

मुहम्मद : नहीं शेख़, फ़िलहाल आप ही हमारे लिए एक कार-आमद

शख्स हैं।

शेख़ : मज़ाक़ वड़ा तकलीफ़-देह है, सुलतान ! आप हमें इजाज़त दें।

मुहम्मद : शेख़ मोहतरिम, अवध के अमीर आईन-उल्-मुल्क ने दिल्ली पर चढ़ाई करने का फ़ैसला किया है।

शेख़ : आपके दोस्त आईन-उल्-मुल्क ने ! क्यों ?

मुहम्मद : यह अभी तक राज़ है, शेख़ साहब।

शेख़ : लेकिन मुझे यह बताने से क्या हासिल होगा, सुलतान ? आपने तो बाग़ी दक्खिन का ग़रूर तोड़ा है, आपके लिए यह कोई मुश्किल नहीं। और मेरी क्या बिसात ?

मुहम्मद : अपनी अज़ीज़-तरीन रिआया की भलाई की ख़ातिर हम अमन चाहते हैं। इसलिए हम सुलह चाहते हैं। लेकिन उल्-मुल्क को हमारे इरादों पर कैसे यक़ीन होगा ? अगर हम क़ासिदों के ज़रिए सुलह का पैग़ाम भेजेंगे, तो उल्-मुल्क हरगिज़ ऐतबार नहीं करेगा। लेकिन वह आपकी ताज़ीम करता है। आपकी नेक-नीयती पर उसे भरोसा है। इसलिए मैं आपसे इल्तिजा करता हूँ कि आप हमारे पैग़ाम-रसाँ की हैसियत से सुलह के नेक काम को अंजाम दें। अपनी ख़ातिर नहीं, उन बेक़सूर मुसलमानों की खातिर जो बिला-वजह मुसलमानों के हाथों मारे जाएँगे, यह ज़िम्मेदारी मैं आपके सुपुर्द करता हूँ।

शेख़ : (दो लम्हे सोचकर) मैं यक़ीन करूँ कि इसके पीछे कोई सियासी चाल नहीं है ?

मुहम्मद : यक़ीनन नहीं है, शेख़ साहब !

शेख़ : (फिर दो लम्हे रुककर) तो हमें कोई एतराज़ नहीं।

मुहम्मद : वाक़ई आप पैग़ाम-रसाँ की हैसियत से आईन-उल्-मुल्क के पास जाने को राज़ी हैं ? इसे हम आपका क़ौल तसलीम करें ?

शेख़ : हाँ।

मुहम्मद : (ताली बजाकर सिपाही को बुलाता है) जाओ, वज़ीर साहब के यहाँ से एलचियों के लाइक़ शाही लिबास लेकर आओ।

ख़ादिम बा-अदब चला जाता है।

शेख़ : शाही लिबास पहले से ही तैयार रखा हुआ था ?

मुहम्मद : मुझे यक़ीन था कि हालात की संगीनें देखकर आप इस ज़िम्मेदारी से इनकार नहीं करेंगे।

शेख़ : (हँसकर) आपकी हिकमते-अमली हर तरह से क़ाबिले-तारीफ़ है, सुलतान। लेकिन आप अपने तजुरबे के अंजाम से बेख़बर लगते हैं। अगर आईन-उल्-मुल्क भी मुझे आपका एक मोहरा तसलीम करे तो?

मुहम्मद : वो अहले-दिल्ली की मानिंद अहमक़ नहीं है। मेरी फ़ितरत और तबियत से वह अच्छी तरह वाक़िफ़ है। आख़िर हम दोनों जिगरी दोस्त हैं। इसके अलावा आज के इस हादसे की ख़बर अभी उस तक पहुँच भी नहीं सकती। हमें यहाँ से कुछ ही देर में कूच करना है। उल्-मुल्क अपनी फ़ौज लेकर पहले ही रवाना हो चुका है। हमें कन्नौज के क़रीब उसका मुक़ाबला करना है।

ख़ादिम शाही लिबास लिए दाख़िल होता है। मुहम्मद चोग़ा हाथ में लिए शेख़ की तरफ़ बढ़ता है।

शेख़ : (रोकते हुए) जब आपको जंग करना ही नहीं है तो मुक़ाबले की जगह की पाबंदी के माने?

मुहम्मद : यह सच है कि हम ख़ून-ख़राबा नहीं चाहते। मगर कहीं उल्-मुल्क की ललचाई हुई नज़र दिल्ली के शाही तख़्त पर जमी हो, तो हमें आगे बढ़कर उसका मुक़ाबला करना ही है। हम सुलतान हैं शेख़ मुअज़्ज़म, अपनी सलतनत और रिआया की सलामती हमारी ज़िम्मेदारी है।

शेख़ : (प्रभावित होकर) सुलतान! इतनी देर के बाद मैं समझ पा रहा हूँ, आपमें इस क़दर ख़ुद-एतमादी क्यों है!

मुहम्मद : अब आप शाही लिबास पहनने के लिए रज़ामंद हैं?

शेख़ : ये ख़ातिरदारी, यह इज़्ज़त...लेकिन किस क़दर अजीब हालत में!

मुहम्मद शेख़ को शाही लिबास पहनाता है, सर पर साफ़ा रखता है। दोनों आमने-सामने खड़े होते हैं। लिबास के लिहाज़ से दोनों एक जैसे लगते हैं।

शेख़ : सुलतान! मुझे अभी तक यक़ीन नहीं आ रहा कि इसके पीछे कोई सियासी चाल नहीं है।

ढिंढोरची : सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदो ! सुनो, शाहे-शाहान का फ़रमान सुनो।
रहम-दिल सुलतान की मेहरबानी के मोहताज, अवध के हाकिम आईन-उल्-मुल्क ने खिलाफ़े-उम्मीद दिल्ली पर चढ़ाई करने का मनसूबा बनाया है। आईने-उल्-मुल्क से मिलने के वास्ते, अमन-पसंद सुलतान बज़ाते-खुद कन्नौज की तरफ़ रवाना हो गये हैं। सुलतान बाग़ी आईने-उल्-मुल्क को यह जता देना चाहते हैं कि इस क़िस्म की बग़ावत महज़ अहमक़ाना हरकत है, और यह कामयाब नहीं होगी। सुलतान मुल्क से अमनो-अमान में ख़लल नहीं पड़ने देंगे। इस नेक मक़सद के लिए खुदातर्स सुलतान की इमदाद के इरादे से बंगाल के क़ाबिले-ताज़ीम शेख़ इमामुद्दीन भी शाह के हम-सफ़र हैं।
जब तक सुलतान दारुल-सलतनत दिल्ली से बाहर रहेंगे, तब तक के लिए उनकी जगह संपन शहर के दिलेर शहाबुद्दीन नायब सुलतान की हैसियत से हुकूमत की कार्रवाइयों को अंजाम देंगे। इस दरमियान दिल्ली के अवाम से यह उम्मीद की जाती है कि नायब सुलतान के हुक्मों की तामील करें। आगे फ़रमान यह है कि सुलतान की फ़तहयाबी के लिए मुसलसल इबादत जारी रहे। सुनो...सुनो...।

स्टेज पर अँधेरा। फिर थोड़ी देर के बाद।

: सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदो ! सुनो...नायब सुलतान शहाबुद्दीन का ताज़ा फ़रमान सुनो।

सुलतान ने बाग़ी आईन-उल्-मुल्क के साथ सुलह करने की जो-जो तदबीरें इख़्तियार की थीं, सब बेकार साबित हो गईं। नतीजा यह है कि सुलतान को कन्नौज के मैदाने-जंग में बाग़ियों का मुक़ाबला करना पड़ा। बाग़ियों की फ़ौज ग़ाज़ियों की बनिस्बत कई गुना ज़्यादा थी। फिर भी हौसलामंद सुलतान और उनके जाँ-बाज़ सिपाहियों ने बड़ी बहादुरी से लड़ाई की और बाग़ी आईन-उल्-मुल्क की फ़ौज को करारी शिकस्त दी है। एहसान-फ़रामोश आईन-उल्-मुल्क अब हमारे मेहरबान सुलतान के हाथों गिरफ़्तार हो गया है। मौजूदा फ़तहयाबी की खुशी में, जो अल्लाह के फ़ज़ल से इनायत हुई है, बड़ी मसजिद में आज शाम को बड़े पैमाने पर इबादत की जाएगी। इस इबादत में तमाम अक़ीदत-मंद मुसलमान शरीक हों और अल्लाह-ताला के हुज़ूर में नमाज़े-शुक्रगुज़ारी अदा करें!

दृश्य : 4

महल का दूसरा कोना। नायब सुलतान शहाबुद्दीन खतूत पढ़ने में मसरूफ़ हैं। दरबान दाखिल होता है।

दरबान : नायब सुलतान सलामत रहें। मादरे-सुलतान, नायब सुलतान में मुलाक़ात की ख़ातिर तशरीफ़ लाई हैं।

शहाबुद्दीन : मादरे-सुलतान ? कौन ?

दरबान : सुलतान की वालिदा हुज़ूर।

शहाबुद्दीन : उन्हें बा-इज़्ज़त अन्दर ले आओ।

दरबान चला जाता है, शहाबुद्दीन ख़तों को किनारे रख देता है। दरबान के साथ सौतेली माँ दाखिल होती है। शहाबुद्दीन उठकर बंदगी करता है।

शहाबुद्दीन : बड़ी बेगम साहिबा का साया हम पर रहे। पैग़ाम भिजवातीं तो हम खुद खिदमत में हाज़िर हो जाते।

सौतेली माँ : न जाने क्यों यकायक खौफ़ महसूस होने लगा और बेसब्री बढ़ती गई, इसलिए मैं खुद यहाँ आ गई। सुलतान की कोई नई खबर मिली है ?

शहाबुद्दीन : नहीं बेगम साहिबा, हम खुद हैरान हैं कि अब तक कोई खबर-रसाँ क्यों नहीं आया ? आठ रोज़ पहले जो जंग हुई थी और सुलतान ने आईन-उल्-मुल्क को जिसमें हरा दिया था, उसके बाद कोई इत्तिला नहीं मिली। सुलह

क्यों नहीं हुई, और सुलह कराने के वास्ते जो शेख़े-मोहतरिम साथ गए थे, उनका क्या हुआ...इसके मुताल्लिक़ कुछ ख़बर नहीं मिली। माफ़ करें बेगम साहिबा, मैं भी आपकी तरह अँधेरे में हूँ।

सौतेली माँ : माफ़ी किस बात की नायब सुलतान? सुलतान की ग़ैर-हाज़िरी में भी यहाँ इंतज़ाम बर-क़रार रहा, इसके लिए हम आपके शुक्र-गुज़ार हैं।

शहाबुद्दीन : मेरी क्या हस्ती है, बेगम साहिबा? अगर वज़ीरे-आज़म मुहम्मद नजीब जैसे दूरंदेश सियासत-दाँ की मदद न होती तो शायद...

सौतेली माँ : आप उसका नाम न लीजिए। मुझे उससे कोई दिलचस्पी नहीं। मैं उससे इंतिहाई नफ़रत करती हूँ। ग़नीमत है कि आपके आने पर मुझे नजीब के साथ गुफ़्तगु करने की नौबत नहीं आई।

शहाबुद्दीन : यह आपकी ज़र्रा-नवाज़ी है कि आपने मुझे इस क़दर क़ाबिले-एतबार समझा।

सौतेली माँ : मेरे एतबार की बात नहीं। मौजूदा हालात में आपको अपने शहर से बुलाकर आपको हुकूमत की ज़िम्मेदारी जो सुपुर्द की गई है, इसी से साबित होता है कि सुलतान के मोतबिरों में आपका क्या दर्जा है! वरना, दिल्ली क्या अमीर-उमराओं से ख़ाली हो गई थी? उनकी जगह...

दरबान अन्दर आता है।

दरबान : बेगम हुज़ूर और नायब सुलतान सलामत रहें। रतनसिंह तशरीफ़ लाए हैं।

शहाबुद्दीन : फौरन भेज दो...

दरबान जाता है।

सौतेली माँ : रतनसिंह कौन है?

शहाबुद्दीन : मेरा दोस्त...दोस्त से भी ज्यादा मेरा भाई है। मेरे वालिद के हाथ उसके अब्बा का क़त्ल हुआ था। लेकिन... **(रतनसिंह दाख़िल होता है)** आपस में हम भाई-भाई हैं। ...क्या ख़बर है रतनसिंह? सुलतान कहाँ हैं?

रतनसिंह : अभी-अभी दिल्ली तशरीफ़ लाये हैं। शाही महल के सदर मुक़ाम की तरफ़ गये हैं।

सौतेली माँ : क्या? तब तो मुझे वहाँ जाना चाहिए।

रतनसिंह : गुस्ताखी माफ़ हो बेगम साहिबा, सुलतान के साथ बंदा भी मौजूद था। सुलतान खुद आपसे और नायब सुलतान से मिलने के लिए इधर ही तशरीफ़ ला रहे हैं। मैं यही पैग़ाम आपको देने आया था।

सौतेली माँ : लेकिन बिना इत्तिला दिए कैसे वापस आ गये ? इस क़दर जल्दबाज़ी में ? हम किस क़दर बेताबी के साथ सुलतान का इंतज़ार कर रहे थे ? वापसी की ख़बर मिल जाती तो सारा शहर इस्तक़बाल के लिए आरास्ता किया जाता। हर रास्ते, हर मोड़ को सजाया जाता ! आख़िर क्या बात थी कि सुलतान ने अपनी वापसी की खबर देना भी गवारा न किया ?

रतनसिंह : **(ज़रा-सी झिझक के साथ)** सुलतान बेहद अफ़सुर्दा हैं, बेगम साहिबा ! शेख इमामुद्दीन का इंतिक़ाल हो गया।

सौतेली माँ : क्या ? शेख इमामुद्दीन का इंतिक़ाल हो गया ?

रतनसिंह : आपको ख़बर नहीं है, बेगम साहिबा ? मैदाने-जंग में शेख मोहतरिम वफ़ात पा गये !

शहाबुद्दीन : क्यों ? क्या हुआ था ? मैदाने-जंग में वो क्यों गये थे ?

रतनसिंह : मैं नहीं जानता शहाबुद्दीन ! उस वक़्त मैं दूसरे मुक़ाम पर लड़ रहा था।

शहाबुद्दीन : लड़ाई का अंजाम क्या हुआ ?

रतनसिंह : हमारी तरफ़ से सिर्फ छः सौ सिपाही खेत रहे, और दुश्मन की फ़ौज का तीन-चौथाई हिस्सा साफ़ हो गया।

शहाबुद्दीन : यानी हमारे जाँ-बाज़ों ने बेमिसाल बहादुरी दिखाई होगी !

सौतेली माँ उदास हो जाती है। उसी वक्त चोबदार की आवाज़।

चोबदार : बा-अदब बा-मुलाहिज़ा होशियार ! खुदावंद, खुदातर्स सुलतान तशरीफ़ ला रहे हैं।

मुहम्मद, नजीब, बरनी दाखिल होते हैं। रतन-सिंह बंदगी करता है।

शहाबुद्दीन : (झुककर) सुलतान का इक़बाल बलंद हो। खुदा आपका हर कदम फ़तह की जानिब ले जाये !

मुहम्मद : बंदगी नहीं शहाबुद्दीन, गले मिलो **(गले मिलता है)**। मेरी ग़ैर-मौजूदगी में तुमने जो हुकूमत की बागडोर सँभाली है, उसके लिए हम तहे-दिल से तुम्हारा एहसान

मानते हैं।

शहाबुद्दीन : मैं सुलतान का खादिम हूँ, खुदावंद।

सौतेली माँ : मुहम्मद, शेख़े-मुअज्ज़म के मुताल्लिक़ यह कैसी खबर आई है...?

मुहम्मद : **(चेहरा एकदम फ़क़ पड़ जाता है)** क्या यह अभी दरियाफ़्त करना था, अम्मी? मुअज़्ज़म की मौत का तसव्वर भी करते हैं, तो रूह काँप जाती है। किस क़दर बद-शक्ल हो गई थी उनकी लाश! **(जैसे अपने आपसे बोले जा रहा हो)** शेख का बेजान जिस्म खेमे में लाया गया। सर से पैर तक तीरों से छिदा हुआ था। ज्योंही मेरी नज़र उस पर गई, लम्हे भर के लिए मुझे एहसास हुआ कि गोया वे तमाम तीर मेरे जिस्म में बिंध गए हों। मुझे लगा, मेरे सामने की लाश शेख़ की नहीं, बल्कि खुद मेरी हो। उनकी डरावनी सूरत मेरे सीने में घुस गई थी। दिल में आया कि वहाँ से बेतहाशा भाग जाऊँ और कहीं अथाह गहराइयों में छुप जाऊँ! या अपने सारे वुजूद को उस बेजान जिस्म में डाल दूँ!

बरनी : हुज़ूर, शेख़ की मौत की वजह से आप क्यों ग़मगीन हैं? उनकी मौत का बायस...?

सौतेली माँ : उस ग़द्दार आईन-उल्-मुल्क का क्या किया? उसे मौत के घाट नहीं उतारा?

मुहम्मद : **(धीमी आवाज़ में)** उसे मैंने आज़ाद कर दिया!

सभी ताज्जुब से आँखें फाड़कर देखने लगते हैं।

सौतेली माँ : आज़ाद कर दिया? उसकी बेवफ़ाई पर इनाम अता किया? उस बदकार को तो फ़ौरन ख़त्म करवा देना चाहिए था।

नजीब : बेगम साहिबा बजा फ़रमा रही हैं, हुज़ूर! अवध में आईन-उल्-मुल्क के बेशुमार हिमायती हैं। उसको आज़ाद करने का मतलब है, बाग़ियों के हाथ जलती मशाल थमा देना।

बरनी : आपका यह ख्याल बिल्कुल ग़लत है, वज़ीरे-आज़म! सुलतान जैसी हस्ती के लिए यही वाजिब था। अपनी इन्साफ़-पसंदी से सुलतान ने यह साबित कर दिया कि दोस्ती सियासत से ज़्यादा अज़ीज़ है।

नजीब : (बेरुखी से) फिर वही राग...।

मुहम्मद : (हँसता हुआ) शायद आप सबका ख्याल है कि मैंने आईन-उल्-मुल्क खुदा के रहमो-करम पर छोड़ दिया। आईन-उल्-मुल्क को मैंने सिर्फ़ आज़ाद ही नहीं किया, बल्कि उसे अवध का राज भी वापस कर दिया।

नजीब : अगर ख़ुद तबाही को दावत देना चाहें तो हमारी क्या मजाल है हुजूर, कि कुछ कहें !

सौतेली माँ : ऐसा कौन-सा बड़ा काम उसने किया था जिसके लिए उसके साथ ऐसा सलूक किया गया ?.

मुहम्मद : (कहानी सुनाने के रंग में) वह एक लम्बी दास्तान है। कन्नौज जाने से पहले, जिस शतरंजी मसले का हल हासिल किया था, उसमें एक भूल रह गई थी। आईन-उल्-मुल्क को जब मेरे सामने पेश किया गया, तो मैंने उससे कहा—'उल्-मुल्क ! मैंने शतरंज में एक मुश्किल मसले का हल तलाश कर लिया है। देखोगे ?' वह राज़ी हो गया। मैंने शतरंज बिछाकर खेल बताया। वह मुतास्सिर होकर बोला—'कमाल का हल पाया है, सुलतान', और पल भर खामोश रहा...फिर एकाएक बोल पड़ा...'नहीं सुलतान, इसमें एक भूल है' और योंही लम्हों में उसने वह भूल दिखा दी जिसका मुझे ज़रा भी इल्म नहीं था। तो हमने उनकी तमाम सियासी ग़लतियों को माफ़ कर दिया।

बरनी : वाक़ई आप बलंद हैं हुजूर।

मुहम्मद : और तुम नेक-दिल हो बरनी। आख़िरकार नेक-दिली की ही क़द्र होती है। वज़ीरे-आज़म के चेहरे की शिकनों को ज़रा ग़ौर से देखो। लगता है कि हमने उल्-मुल्क को आज़ाद करके जो दरिया-दिली दिखाई, गोया उस पर उसे ज़रा भी यक़ीन नहीं। शायद इसमें भी उसे सियासी चालें नज़र आ रही होंगी।

नजीब : अपनी फ़ितरत से मजबूर हूँ, और इत्तिफ़ाक से मेरा काम भी उसी क़िस्म का है।

मुहम्मद : शहाबुद्दीन, अब हम रुखसत होते हैं। आज ही शहर भर में मुनादी करा दो कि शेख मोहतरिम की शहादत के बोझ से नजात हासिल करने के लिए सब लोग आज शाम

को परवर-दिगार से दुआएँ माँगें।

बरनी : उनकी शहादत का बोझ दिल्ली पर क्यों नाज़िल होगा, हुज़ूर ?

मुहम्मद : बरनी, शेख जैसे मर्दे-खुदा की मौत हो, और हम लोग ज़िन्दा रहें, यही गुनाह है। अब हम जाएँगे। शहाबुद्दीन भी चंद लम्हों के लिए फ़राग़त महसूस करें।

सिवाय शहाबुद्दीन और रतनसिंह के सब चले जाते हैं।

शहाबुद्दीन : रतन, सुलतान की इस संजीदगी की क्या वजह है ?

रतनसिंह : मैं बहुत थका हुआ हूँ, शहाबुद्दीन। मैं सोना चाहता हूँ।

शहाबुद्दीन : इस कदर बेरुखी क्यों रतन ? यह तो बताओ, आखिर शेख़े-मोहतरम पर क्या गुज़रा था ?

रतनसिंह : तुम्हारे सुलतान इस हद तक धोखेबाज़ हो सकते हैं, यह मैंने ख्वाब में भी नहीं सोचा था ! एक ओर क़त्ल कराते हैं, दूसरी ओर उस क़त्ल को शहादत का रंग देते हैं।

शहाबुद्दीन : क़त्ल ? किसका ? क्या बक रहे हो ?

रतनसिंह : हाँ, मैं बक रहा हूँ ! मैं खब्ती हूँ न !

शहाबुद्दीन : ग़लत मत समझो रतन। मैं कई बार तुमसे कह चुका हूँ कि बिला-वजह सुलतान की शिकायत करना सरासर नाजायज़ है। आख़िर कोई वजह भी तो हो। हिन्दुओं की तरक़्क़ी और भलाई के लिए सुलतान ने क्या नहीं किया ? नफ़रत के जोश में इस सच्चाई को भी नज़रअंदाज़ कर दोगे ?

रतनसिंह : सुलतान की नेक-नीयती का मैं हमेशा से कायल रहा हूँ। मगर उनकी यह नेक-नीयती भी बड़ी बे-मुरव्वत है, शहाबुद्दीन ! उनकी इसी नेक-नीयती ने मुसलमानों की तरह हिन्दुओं पर भी सितम ढाये हैं। दोआब के खौफ़नाक क़हत के शिकारों में सिर्फ़ मुसलमान ही नहीं...।

शहाबुद्दीन : क़हत कुदरती बला है। उसके लिए सुलतान के बलंद ख्यालों पर शक करना हद दरजे की नासमझी है। तुम्हारी ऐसी ही बातें मुझे बकवास लगती हैं।

रतनसिंह : बकवास है या नासमझी, यह तुम्हारा ज़ाती नज़रिया है। मगर सच्चाई ये है कि दोआब की ज़मीन की ज़रखेज़ी पर सुलतान का जी ललचा गया और बिना सोचे-समझे

मालगुज़ारी पहले से दस गुना ज़्यादा बढ़ा दी। अब खुदा की क़ुदरत, गये साल बारिश ही नहीं हुई। मगर क्या इस क़ुदरती बला का इंतिक़ाम रिआया से लेना चाहिए था? मालगुज़ारी न देने वालों पर ज़ुल्म ढाना चाहिए था? उनको उनकी मौरूसी ज़मीन और जायदाद से बेदख़ल कर देना चाहिए था? तब क़हत क्यों नहीं पड़ता!

शहाबुद्दीन : मैं मानता हूँ कि वहाँ ज़्यादती हुई है। मगर ये ज़्यादतियाँ सुलतान के हाकिमों की हैं।

रतनसिंह : यानी, तुम्हारे नुक़्तए-नज़र से सुलतान बेदाग़ हैं। किसी भी वारदात के लिए वो ज़िम्मेदार नहीं है। तो फिर शेख़ इमामुद्दीन की मौत का कौन जवाब-देह है? आईन-उल्-मुल्क है? तुम्हारे वही हाकिम हैं?

शहाबुद्दीन : आखिर तुम साफ़-साफ़ क्यों नहीं बताते? शेख़े-मोहतरिम के साथ क्या वारदात हुई?

रतनसिंह : मैं डरता हूँ शहाबुद्दीन, तुम्हारे सुलतान से नहीं, बल्कि तुमसे! मुझे अंदेशा है कि शेख़ इमामुद्दीन की मौत की हक़ीक़त सुनने के बाद भी तुम पर कोई असर न हो।

शहाबुद्दीन : यह सरासर ज़्यादती है रतन कि तुम यों हमारी नीयत पर शक करो। जैसी तुम्हारी मर्ज़ी!

रतनसिंह : तुम्हारी इस तरह की जज़बाती हरकतों से मैं बेज़ार हो जाता हूँ। (फिर रुककर) मुझे तो इतना याद है कि इस हादसे में मेरी मौत नहीं हुई...बस, यही ग़नीमत समझो।

शहाबुद्दीन : अब कब तक राज़दारी करते रहोगे रतन? जो हादसा हुआ है, आखिर उसे बयान क्यों नहीं करते?

रतनसिंह : अगर इतना इसरार है तो सुनो...। सुलतान ने तुम्हें तो दिल्ली बुला लिया। और मैं कन्नौज जाकर उनसे मिला, अर्ज़ की कि मैं शहाबुद्दीन की तरफ़ से आया हूँ...और जंग में सुलतान की मदद के लिए तैयार हूँ। लेकिन मुझे लगा कि मेरी आमद पर सुलतान को कोई खुशी नहीं हुई, और वो कुछ बातें मुझसे पोशीदा रखना चाहते हैं। अगली सुबह को ही मेरा शुबहा सही साबित हुआ।

शहाबुद्दीन : क्यों, क्या हुआ?

रतनसिंह : उस दिन शेख़ मोहतरम, आईन-उल्-मुल्क के साथ सुलह कराने के इरादे से अपने मुक़ाम से रवाना होने वाले थे।

उनके साथ एक दस्ता भी जाने के लिए तैयार किया गया। और इस दस्ते की अगली क़तार में रहने के लिए ही मुझे हुक्म दिया गया। मुझे अहसास था कि अगर जंग छिड़ जाती तो दस्ते की पहली क़तार ही यक़ीनन खत्म होती !

लम्हे-भर के लिए सन्नाटा।

शहाबुद्दीन : तो फिर ?

रतनसिंह : शेख़ इमामुद्दीन हाथी पर सवार थे। बेचारे ! अपने को बाक़ायदा शाही सफ़ीर समझ रहे थे। उनके सर पर सुलतान का इसरार से दिया हुआ इमामा सजा था। सुलतान के ही हाथों इसरार से पहनाया हुआ शाही लिबास उनके जिस्म पर था। और बिला-शुबहा, दूर से शेख़े-मुअज़्ज़म बज़ाते-खुद सुलतान ही लगते थे।

शहाबुद्दीन : उस वक़्त सुलतान अपने ख़ेमे में थे ?

रतनसिंह : नहीं, वो चार हज़ार की फ़ौज लेकर नज़दीक के पहाड़ के पीछे छुपे खड़े थे।

शहाबुद्दीन : छुपे हुए ?

रतनसिंह : शेख़ इमामुद्दीन हमारे दस्ते के आगे-आगे आइन-उल्-मुल्क की फ़ौज की तरफ़ बढ़े। उनका हाथी उल्-मुल्क की फ़ौज से पाँच सौ गज़ के फ़ासले पर खड़ा हुआ। शेखे-मोहतरिम हाथी के हौदे पर से खड़े होकर आईन-उल्-मुल्क को कुछ बताना चाहते ही थे कि एकाएक हमारी तरफ़ से किसी ने जंगी तुरही बजा दी। इसी को इशारा मानकर मेरे इर्द-गिर्द खड़े सिपाहियों ने दुश्मनों पर तीरों की बौछार शुरू कर दी। बाज़ सिपाहियों ने दुश्मनों पर हमला बोल दिया। जंग छिड़ गई। लेकिन शहाबुद्दीन, जंगी कार्रवाइयाँ पहले हमने शुरू की थीं, उल्-मुल्क ने नहीं।

शहाबुद्दीन : और सुलतान ?

रतनसिंह : मैं कुछ समझ नहीं पाया। शेख़ की तरफ़ निगाह उठाई, मारे दहशत के उनका चेहरा बिगड़ चुका था। परीशाँ-सूरत शेख़ चिल्लाने लगे...'रुक जाओ, रुक जाओ' !

शहाबुद्दीन : या ख़ुदा !

रतनसिंह : मगर नक़्क़ारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है ? मैं

भी बे-जिगरी से जूझता रहा। एकाएक 'सुलतान को बचाओ, सुलतान को बचाओ,' कहकर एक साथ कई चीखें सुनाई पड़ीं। मैंने नज़र उठाकर शेख़ साहब की जानिब देखा, वो...।

रुकता है, कमरे की ख़ामोशी चीख़ती हुई-सी लगती है।

रतनसिंह : शेख़े-मुअज़्ज़म पहले की तरह बेहिस खड़े थे, और मुसलसल तीरों की बौछार उनके जिस्म को बींधे जा रही थी। तीरों से बचने की कोशिश में शेख़ ने अपना मुंह ढाँप लिया। अब वो काँटों का एक लंबा बुत-सा नज़र आने लगे। फिर देखते-देखते शेख़े-मोहतरम का जिस्म हाथी के हौदे पर से ज़मीन पर धड़ाम से आ गिरा। हम सब घबराकर तितर-बितर हो गये। बेतहाशा पीछे की तरफ़ भागने लगे। भागते ही रहे, भागते ही रहे। हम सब इंतिहाई दहशत में थे। हमने अपने आपको घोड़ों की मर्ज़ी पर छोड़ दिया...।

शहाबुद्दीन : और सुलतान ने कोई क़दम नहीं उठाया ?

रतनसिंह : (व्यंग्य से, हँसकर, धीरे से) हाँ, ज़रूर उठाया। सिपाहियों ने यही समझा कि ख़ुद सुलतान मारे गए। अंधे दुश्मन, फ़तह का नारा लगाते हमारे दस्ते का पीछा करते हुए, मैदाने-जंग की सरहद तक बढ़ आये। उधर पहाड़ के पीछे सुलतान बदस्तूर अपने चार हज़ार सिपाहियों के साथ मुस्तैद खड़े थें। अब दुश्मनों की फ़ौज तबाही के जाल में फँस गई। जंग ख़त्म होते-होते दुश्मनों की तीन-चौथाई फ़ौज का सफ़ाया हो चुका था, और (व्यंग्य से) हम फतहयाब हो गए। (रुककर) क्या अब भी सुलतान को गुनहगार मानने से इनकार करोगे ? क्यों, अब भी तुम्हें मेरे अलफ़ाज़ पर एतबार नहीं हुआ ?

थोड़ी देर ख़ामोशी, फिर।

शहाबुद्दीन : (धीमी आवाज़ में) हाँ, सुलतान शायद क़सूरवार हैं, ज़रूर हैं लेकिन यह क़सूर महज़ सुलतान का नहीं। इसमें अहले-दिल्ली भी शरीक हैं। बड़ी उम्मीदें लेकर उस दिन शेख़े-मोहतरम दिल्ली आये होंगे। उनको यक़ीन रहा होगा कि अहले-दिल्ली उनको सुनेंगे। मगर किसी को भी उस

जलसे में पहुँचने की फ़ुरसत नहीं मिली। अगर चंद शख़्स भी उस जलसे में मौजूद रहते तो यह ख़ौफ़नाक हादसा कभी न होता।

रतनसिंह : **(ठहाके के साथ)** शाबाश! ये हैं दोस्ती का बेमिसाल नमूना। मगर तुम्हें मालूम भी है कि ख़ुद अहले-दिल्ली इस हादसे के मुताल्लिक़ क्या सोचते हैं?

शहाबुद्दीन : मुझे क्योंकर मालूम हो?

रतनसिंह : मालूम करने की कोशिश भी की है?

शहाबुद्दीन : क्या मतलब?

रतनसिंह : दिल्ली के बाज़ उमरा, ताजिर, इमाम वग़ैरह फ़िलहाल पोशीदा तौर पर कोई तजवीज़ करना चाहते हैं। यह कोई पहली बार नहीं कि सुलतान ने इस क़िस्म की फ़रेब-कारी की हो। गये दो सालों से उनसे ऐसी बेशुमार हरकतें सर-ज़द होती रही हैं। इसलिए सुना है कि अब सुलतान की इन नाक़ाबिले-बरदाश्त हरकतों को हमेशा के लिए ख़त्म करने की तदबीरें निकाली जाएँगी।

शहाबुद्दीन : तुम्हें कैसे पता लगा?

रतनसिंह : दिल्ली की सियासती चालों के लिए तुम अभी नौसिखुए हो, शहाबुद्दीन! जिस रोज़ मालूम हुआ कि सुलतान ने जंगी दस्ते की अगली क़तार में भिजवाकर मुझे मरवा डालने की साजिश की थी, उसी रोज़ से कई अमीर-उमरा मेरे पीछे पड़े हैं। आज ही, अभी कुछ ही लम्हे पहले जब मैं इस तरफ़ आ रहा था, सुलतान के बिलकुल बीस गज़ पीछे एक अमीर ने अपनी खुफ़िया बैठक में आने की दावत दी है। मुमकिन हो तो तुम्हें भी वहाँ ले आने को कहा है। लेकिन मैंने जवाब में कहा था कि मैं ज़रूर बैठक में मौजूद रहूँगा, मगर शहाबुद्दीन के मुताल्लिक़ वादा नहीं करता। अगर वह राज़ी हुआ तो ज़रूर लेता आऊँगा बोलो... चलोगे?

शहाबुद्दीन : हुं...।

दृश्य : 5

दिल्ली शहर की ही एक क़याम-गाह। चार-पाँच अमीर, इमाम बैठे हैं। दूसरी तरफ़ शहाबुद्दीन और रतनसिंह भी मौजूद हैं।

शहाबुद्दीन : मैं यह साफ़ बता देना चाहता हूँ कि मैं सुलतान का कोई ख़ास दोस्त नहीं हूँ, और न उनसे मेरी कोई ख़ास वाबस्तगी है। लेकिन यहाँ सवाल मेरे ताल्लुक़ात या दोस्ती का नहीं है, बल्कि आपका अपना ज़ाती मामला है। अगर सुलतान का तर्ज़े-अमल आपको पसंद नहीं है, तो यह आपका सरदर्द है। मैं तो चन्द रोज़ के बाद अपने सूबे वापस जा रहा हूँ। ऐसी सूरत में मुझे ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता।

अमीर 1 : हाँ, हाँ, वही तो इस मामले का ख़ास नुक़ता है। आप सुलतान के ख़ास मोतबिरों में से एक हैं। दूसरों की बात हम नहीं कहते मगर आपके साथ कभी वो बे-एतबारी नहीं बरतेंगे।

शहाबुद्दीन : (हँसता है) मैं सुलतान का मोतबिर हूँ, महज़ इसी बिना पर आप मुझसे सुलतान की हुकूमत की बदख़ोई करवाना चाहते हैं। मैं तो दिल्ली का बाशिंदा भी नहीं हूँ...।

अमीर 2 : दिल्ली की आबो-हवा की यही यो ख़ास सिफ़त है कि यहाँ अहले-दिल्ली, अहले-दिल्ली का एतबार नहीं करते। दिल्ली-वालों को हमेशा से बाहरी रहनुमाई ही रास आई

है। (फिर दबी आवाज़ में) हम सब घर की मुर्ग़ियाँ जो हैं!

इस पर सब दबे-दबे हँसने लगते हैं।

शहाबुद्दीन : ऐसा कौन-सा ख़तरा दरपेश है यहाँ पर...मुझे तो कुछ नज़र नहीं आता।

अमीर 1 : आप...बराहे-मेहरबानी ज़रा ग़ौर तो फरमाइए। यह दौलताबाद जाने का एक नया बखेड़ा क्यों खड़ा किया गया, इसीलिए न कि हम जैसे बा-इज़्ज़त बा-ईमान अमीरों को बिला-वजह परेशान किया जाए। यहाँ दिल्ली में हमारी अपनी जमीन-जायदाद है, अपनी ज़ात-बिरादरी है, यानी हम यहाँ के पुश्त-दर-पुश्त जमे हुए बाशिंदे हैं! अब हमें यहाँ से बेदख़ल करने की साज़िश की जा रही है, और दौलताबाद ले जाने की तैयारियाँ हो रही हैं! मगर दौलताबाद से हमारा क्या वास्ता है? यहाँ से एकदम उलटा हाल है वहाँ का! इस पर वहाँ के बाशिंदे भी हिन्दू हैं, जो हमें देखते ही लाल-पीले हो जाएँगे। सुलतान के पास तो मुसल्लह फ़ौज है जिसके बूते पर वो हिन्दुओं को अपने क़ाबू में दबाए रख सकते हैं। मगर हमारा क्या होगा? न दोस्त-हिमायती हैं, न ज़ात-बिरादरी है। मजबूर होकर भले ही सुलतान की क़दम-बोसी किया करो। मैं ग़लत-बयानी तो नहीं कर रहा हूँ? दर-हक़ीक़त जनाब, हम हमेशा वहाँ मुब्तलाए-आफ़त रहेंगे। यही मक़सद है सुलतान की इन हरकतों का!

अमीर 2 : अब आपसे क्या छुपाएँ? देख लीजिए न...यहाँ दिल्ली में भी हमारी क्या दुर्गत हो गई है। जब से ये मौजूदा सुलतान तख़्त-नशीन हुए हैं, तभी से हम पर बेतहाशा महसूल बढ़ाए जाते रहे हैं। ज़मीन, मकान, खाना-पहनना, सब पर महसूल लगा है। अगर ये रफ़्तार यहीं तक रुक जाती तो भी कुछ ग़नीमत थी। मगर अब फ़रमाते हैं कि जुआ खेलने का महसूल भी पहले अदा करो, ऐसी सूरत में हम अमीर-उमरा ज़िन्दा कैसे रहें? ये तो हद दर्जे का सितम है कि बिना सुलतान को इत्तिला दिए कुछ भी न करो।

शहाबुद्दीन : बजा है, लेकिन सुलतान की तख़्त-नशीनी के बाद ही देहातों-कस्बों में कितने मकतब-मदरसे खुले हैं? पुल-नहरें

बनी हैं ? दवाख़ाने क़ायम हुए हैं ? अब इन सबके इंतज़ाम के लिए रक़म भी तो चाहिए !

सैयद : लेकिन ग़ैर-दीनी तरीक़ों से रक़म कमाना इस्लाम में बिल्कुल मना है शहाबुद्दीन ! क़ुराने-पाक में सिर्फ़ चार क़िस्म की ज़कातें तसलीम की गई हैं। मगर सुलतान को इनकी परवाह ही कहाँ है ? अलावा इसके इस्लाम में यह भी तसलीम-शुदा रिवाज रहा है कि जंगी आमदनी का अस्सी फ़ी-सदी हिस्सा सीधे इमाम को पहुँचे। लेकिन मौजूदा सुलतान सिर्फ़ बीस फ़ी-सदी मुहैया करते हैं। अगर यही सूरते-हाल क़ायम रही तो हम इमाम-सैयदों की क़द्र ही क्या रहेगी ! मौजूदा सुलतान की बे-इन्साफी का एक और ताज़ा सबूत पेश करता हूँ। मामला क़ाबिले-ग़ौर है। कहते हैं कि अब से हिन्दू लोग...।

रतनसिंह को देखकर चुप हो जाता है।

रतनसिंह : कहते जाइये सैयद, मेरी मौजूदगी का लिहाज़ न कीजिएगा। हम भी मौजूदा ख़ब्ती सुलतान से तंग आ चुके हैं।

शहाबुद्दीन : (उबलते ग़ुस्से को रोकता हुआ) आप कहना क्या चाहते हैं।

सैयद : हाँ, यही कि मैं अर्ज़ करना चाहता था कि...हिन्दू लोग जज़िया दें, ज़रूर दें। नहीं देते हैं तो देने के लिए उन्हें मजबूर कर दें। मगर सुलतान फ़रमाते हैं कि हिन्दू-मुसलमान बराबर हैं। दोनों क़ौमें इन्सान की नस्ल हैं, हिन्दुओं का जज़िया देना इन्सानियत की बेक़द्री है। इससे बद-तरीन ग़ैर-आईनी हरकत और क्या होगी ?

शहाबुद्दीन : (सख़्त नाराज़गी के साथ) बस, बस, बहुत हो चुका। आप लोगों के साथ मैं कभी इत्तिफ़ाक़ नहीं कर सकता। और यह मेरा हर्फ़े-आख़िर है। आप लोग सुलतान के पाँव की गर्द तक छूने के क़ाबिल नहीं। चलो रतनसिंह, हम एक पल यहाँ नहीं ठहरेंगे। अलविदा...।

सब भौंचक्के से खड़े हो जाते हैं। एक दूसरे को सवालिया नज़र से देखने लगते हैं।

रतनसिंह : ठीक है, चलो !

उसी वक़्त एक बुज़ुर्ग इमाम, जो अब तक एक

कोने में ख़ामोश बैठे थे, बोलते हैं।

इमाम : क़ाबिले-ताज़ीम शहाबुद्दीन !

शहाबुद्दीन : (पीठ फेरे) आपने सुना नहीं, मेरा फ़ैसला...?

इमाम : शहाबुद्दीन, हमने ज़िन्दगी भर सिवाय अल्लाह-ताला के किसी दूसरी हस्ती के आगे हाथ नहीं फैलाए थे। मगर आज आपके आगे हाथ फैलाते हैं। दो-ज़ानू होकर इल्तिजा करते हैं कि ख़ुदा के वास्ते दीनो-ईमान की सलामती की ख़ातिर आप रुक जाएँ।

शहाबुद्दीन : (इमाम की वेदना से गदगद होकर) क्या मैं जान सकता हूँ कि मैं किससे मुख़ातिब हूँ ?

सैयद : (हिक़ारत से) मोअज़्ज़म शेख़ शम्सुद्दीन तजुद्दारफ़ीम।

शहाबुद्दीन : मोअज़्ज़म शेख़ शम्सुद्दीन ! आली क़द्र ! आप यहाँ इस आलम में क्या कर रहे हैं, इन लोगों के बीच ?

शम्सुद्दीन : बजा फ़र्माते हैं शरीफ़ शहाबुद्दीन ! हमारी भी रूहानी ख़्वाहिश यही थी कि कि मीनारे-मस्जिद में बैठे उस परवर-दिगार की इबादत में हम मशग़ूल रहते। अल्लाह-ताला की राह में हमारी ज़िन्दगी वक्फ़ हो। मगर दीनो-ईमान का वुजूद सिर्फ़ मेरे वास्ते नहीं, बल्कि उन सबके वास्ते है जो उसके मोतक़िद हैं। जब अल्लाह के बन्दे ज़ुल्म के शिकार हों, तब मैं अकेला आशियाने में कैसे पड़ा रहूँ ? शायद आप आगाह नहीं हैं कि गुज़िश्ता एक हफ़्ते के दरमियान यहाँ क्या-क्या वाक़ये हो चुके हैं। शेख़ हैदर को हिरासत में ले लिया गया। शेख़ हूद को जिला-वतन कर दिया गया।

शहाबुद्दीन : मुझे मालूम है। लेकिन शेख़-सैयदों ने भी सियासत में दख़ल देने की कोशिश की थी।

शम्सुद्दीन : शेख़-सैयदों से अगर अपने लोगों की भलाई का ख़्याल रखा तो क्या गुनाह किया ? दारुल-सलतनत को दिल्ली से दौलताबाद ले जाने की ग़लत तजवीज़ की अगर मुख़ालिफ़त की तो कौन-सा जुर्म किया ? अहले-दिल्ली की मुश्किलात का इज़हार कर दिया तो कौन-सा क़सूर हुआ ? फिर नेक-दिल शेख़ इमामुद्दीन ने कौन-सा गुनाह किया था जिनको मैदाने-जंग में क़ुरबानी का बकरा बनाया गया ?

शहाबुद्दीन : (ज़रा रुककर) यह सही है कि शेख़ इमामुद्दीन ने कोई गुनाह नहीं किया था। मगर इस मामले में सिर्फ़ सुलतान ही नहीं बल्कि दिल्ली का हर मुसलमान गुनहगार है। यों तो कोई भी हक़ीक़त ही कहेगा कि शेख़ मोहतरिम सुलतान के साथ ख़ुदकशी के लिए ही अवध गए थे। वो अहले-दिल्ली से ना-उम्मीद हो गए थे। मोअज़्ज़म दिल्ली आए थे दिल्ली के अवाम को बेदार करने के वास्ते, उनमें जोश की रवानी को बहाल करने के वास्ते। वो अवाम के आगे एक नया नज़रिया पेश करना चाहते थे। मगर अफ़सोस! बड़ी मसिजद के वसी सेहन में जब तक़रीर सुनाते शेख़ मोहतरिम तशरीफ़ लाये, तो वहाँ सिवाय सुलतान के कोई शख़्स मौजूद नहीं था। सब अपनी-अपनी क़याम-गाहों में मुंह छुपाए बैठे थे। क्या सुलतान का ख़ौफ़ सबके ज़ह्नों पर बैठ गया था? दिल्ली के बाशिंदों की इस बुज़दिली, इस बेरुख़ी से ही शायद शेख़ साहब का हौसला पस्त हो गया होगा। अब महज़ सुलतान को कोसने से क्या फ़ायदा?

सबके चेहरों पर ताज्जुब की शिकनें नज़र आती हैं।

शम्सुद्दीन : यानी अंदरूनी हरकतों से आप बिल्कुल वाकिफ़ नहीं हैं?

शहाबुद्दीन : अंदरूनी हरकतें?

सब लोग इस तरह मुंह बनाते हैं, जैसे शहाबुद्दीन की नासमझी पर तरस खा रहे हों।

शम्सुद्दीन : हाँ, शरीफ़ शहाबुद्दीन! जिस रोज़ शेख़ इमामुद्दीन की तक़रीर होने वाली थी, उसी रोज़ की सुबह दिल्ली-भर में शाही ऐलान हुआ था कि शहर का हर ख़ासो-आम जलसे में शरीक हो। लेकिन उसी दोपहर को सुलतान के फ़ौजी घर-घर जाकर धमकियाँ दे रहे थे कि जो भी जलसे में शरीक होगा उसके लिए नतीजा अच्छा नहीं होगा।

सन्नाटा! शहाबुद्दीन जवाब नहीं दे पाता।

शहाबुद्दीन : क्या सुलतान फ़ौजियों की इन हरकतों से वाकिफ़ थे?

शम्सुद्दीन : यक़ीनन थे! सुलतान ने फ़ौजियों को ख़ुद हुक्म दिया था कि जलसे में पहुँचने की हर कोशिश को नाकाम कर दिया जाए। जिस वक़्त शेख़ के आगे सुलतान अपनी तशवीश

ज़ाहिर कर रहे थे, कि अभी कोई क्यों नहीं आया, उस वक़्त शहर के मकानात के इर्द-गिर्द उनके सिपाही जलसे में शरीक होने के ख़्वाहिशमंद लोगों को ज़बरदस्ती भीतर ढकेल रहे थे। आपको अब भी यक़ीन नहीं हो रहा है, तो यहाँ देखिए। (**क़मीज़ की ऊपरी गुंडी खोलकर दिखाता है**) सिपाहियों के हुक्म की जो ना-फ़रमानी मैंने की थी, उस पर यह फ़ौजी इनाम मुझे मिला है ? वरना मेरे साथ सख़्ती बरतने की उनको क्या ज़रूरत पड़ी थी ?

रतनसिंह : शहाबुद्दीन, अब तो समझ गए होगे कि सुलतान की ग़ैर-हाज़िरी में तुम्हीं को यहाँ क्यों बुलाया गया था, जबकि गुज़िश्ता मौक़ों पर दिल्ली के उमरा ही सब कारोबार सँभालते थे। (**हँसकर**) इसीलिए तो सुलतान ने तुम्हारा एतबार किया !

शहाबुद्दीन : हो सकता है। मगर इससे कोई ज़ाती हक़-तलफ़ी नहीं हुई।

रतनसिंह : अगर होती तो उसे मालूम करने के लिए अब तक तुम ज़िन्दा भी नहीं रहते।

शम्सुद्दीन : आप भी दुनिया का नफ़ा-नुक़सान सोचते रहेंगे तो अवाम की रहबरी कौन करेगा, शरीफ़ शहाबुद्दीन ? आप इस हक़ीक़त को नहीं देखते कि दिल्ली के ये बदनसीब अवाम, जो सुलतान के नित नए तजुर्बों से परेशान हैं, सुलतान के ज़ुल्म की वजह से तबाह हो गये हैं। ये दौलताबाद जाने से एकदम लाचार हैं। यह न भूलें कि वो किस क़दर कमज़ोर हैं। आप मौजूदा हालात की संगीनी को कब तक नज़र-अंदाज़ करेंगे ? शाहे-सुलतान की ग़ैर-मज़हबी हरकतें— और कब तक जारी रहेंगी ? तब तक शेख़ इमामुद्दीन जैसे और कितने बेगुनाह शहीद होंगे ?

शहाबुद्दीन ख़ामोश रहता है।

अमीर 1 : इजाज़त हो तो हम एक तजवीज़ पेश करें। जबसे आईन-उल्-मुल्क का बखेड़ा खड़ा हुआ है, तब से दिल्ली में शाही फ़ौज की चहल-पहल कम हो गई है। बाज़ लोगों का अंदाज़ है कि दिल्ली में फ़िलहाल फ़ौज है ही नहीं, अगर हो भी तो वो बहुत ज़्यादा नहीं है। तमाम फ़ौज अवध में उलझी

हुई है। अगर कुछ करना है, तो इन्हीं सात-आठ दिनों में अंजाम देना होगा। तब तक शायद आप भी दिल्ली में ही मौजूद रहेंगे। अगर आप सुलतान की मुख़ालिफ़त करने के लिए राज़ी नहीं हैं तो न सही। मगर कम-से-कम इतनी तो आप से उम्मीद कर सकते हैं कि अगर हमने मौजूदा हुकूमत के ख़िलाफ़ वग़ावत कर दी, तो आप सुलतान की जानिब से किसी भी हालत में हमारा मुक़ाबला करने की पेश-क़दमी नहीं करेंगे।

शहाबुद्दीन : इससे तो यही बेहतर है कि मैं सीधे तौर पर आपकी साज़िश में शरीक हो जाऊँ!

रतनसिंह : तो क्यों नहीं शरीक होते? शेख़ शम्सुद्दीन, शेख़ इमामुद्दीन जैसी पाक हस्तियों के साथ जो बदसलूकी हुई है, उससे मुझ जैसे काफ़िर का खून खौल उठा है। और तुम ख़ामोश रहो! तुम कहते हो कि दिल्ली के अवाम बुज़दिल हैं? मगर मैं कहता हूँ कि तुम बुज़दिल हो! सुलतान को क़ातिल क़रार देने की हिम्मत भी तुम में अब नहीं रही। वाक़ई सुलताने-आला की तक़दीर क़ाबिले-रश्क है! सुलतान के जुल्मो-ज़्यादती के बावजूद तुम्हारी वफ़ादारी बरक़रार है।...अब क्यों ख़ामोश खड़े हो? चलो, अपने दौलत-ख़ाने की तरफ़, मेहरबाँ सुलतान के मेहमान-ख़ाने की तरफ़। वहाँ तुम सही सलामत रहोगे, इंसाफ़ और बे-इन्साफ़ी का झंझट भी नहीं होगा।

शहाबुद्दीन : (थोड़ी देर तक ख़ामोश रहकर) मुझे मंज़ूर है। अपनी ख़ातिर नहीं, बल्कि आप लोगों की ख़ातिर, शेख़ शम्सुद्दीन की ख़ातिर। मैं आपका शरीके-हाल हो जाता हूँ।

सब शुकरिया अदा करते हैं।

अमीर 2 : आफ़रीं! आफ़रीं! शरीफ़ शहाबुद्दीन, हमारी तरफ़ से दिली मुबारक-बाद क़ुबूल कीजिएगा।

शहाबुद्दीन अपने ख़्यालों में खोया हुआ है।

शम्सुद्दीन : शरीफ़ शहाबुद्दीन, आपके मौजूदा एहसान को इस्लाम कभी फ़रामोश नहीं करेगा।

शहाबुद्दीन : आप लोग मुझसे क्या उम्मीद रखते हैं? मैं किस तरह आपके काम में कारामद साबित हो सकूँगा? मेरे वालिद

के पास बेशक बहुत बड़ी फ़ौज है, और सुलतान मेरे वालिद से भीतर-ही-भीतर ख़ौफ़-ज़दा भी हैं। मगर आप लोग इस मामले को जल्द-से-जल्द निपटाना चाहते हैं। फ़रमाइए, मेरे लिए क्या हिदायतें हैं ? **(रूहानी तकलीफ़ को दबाते हुए)** क्या आप चाहते हैं कि मैं सुलतान को धोखे से क़त्ल करूँ ?

रतनसिंह : **(चिढ़ाते हुए)** क्यों, अब तक की बातों से इतना भी नहीं समझ पाये ! ! ! **(दूसरों की तरफ़ मुड़कर)** शहाबुद्दीन यों नहीं मानेंगे, उनकी चालाकी में भी एक डंक रहता है। चूंकि उनके वालिद...।

शहाबुद्दीन : रतन...।

रतनसिंह : **(अपनी बात जारी रखता हुआ)** उनके वालिद ने मेरे वालिद के साथ दग़ाबाज़ी या इसी तरह की कुछ जालसाज़ी की थी, और मेरे वालिद के सूबे को हड़प लिया था। तब से उस जुर्म के कफ़्फ़ारे के तौर पर शहाबुद्दीन मेरे साथ बिरादराना सलूक करते रहे हैं। इस वाक़या के बाद से दग़ाबाज़ी का लफ़्ज भी उन्हें नागवार गुज़रता है। **(शहाबुद्दीन से)** मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था, 'शहाबुद्दीन, लफ़्ज दग़ाबाज़ी से ता-ज़िंदगी ख़ौफ़ खाते फिरोगे ?' फिर सुलतान ने ही शेख़ साहब के साथ कौन-सी नेक-नीयती बरती थी कि तुम पर दग़ाबाज़ी का ख़ौफ़ इस क़दर हावी हो जाए ?

शहाबुद्दीन अब भी ख़ामोश हैं।

: बिला खटके मौक़े के लिहाज़ से कोई उमदा तजवीज़ पेश की जाए।

अमीर 2 : मैं भी कब से मगज़-पच्ची कर रहा हूँ, मगर सिवाय सर-दर्द के कुछ भी हासिल नहीं हुआ है।

रतनसिंह : अपनी तरफ़ से एक तजवीज़ पेश करूँ, बिला-शक कारामद साबित होगी।

शहाबुद्दीन : बताओ !

रतनसिंह : आप सबको मालूम है कि सुलतान नमाज़ के किस क़दर पाबन्द हैं। सख़्त शाही हुक्म है कि हर मुसलमान हर रोज़ पाँच मरतबा नमाज़ पढ़े।

सैयद : सुलतान की यही तो एक सिफ़त है।

रतनसिंह : हाँ, गुनहगार को अगर सज़ा देनी है तो उसकी सिफ़त का ही फ़ायदा उठाना चाहिए। शाही हुक्म है कि नमाज़ के वक़्त हर फ़ौजी-सिपाही भी लाज़मी तौर से इबादत करे और इबादत के वक़्त कोई हथियार पास न रखे। इसका मतलब यह है कि हर सिपाही बग़ैर हथियार रहेगा। ख़ुद सुलतान उस वक़्त ग़ैर-मुसल्लह होंगे।

अमीर 2 : **(बड़ी बेसब्री और बेताबी के साथ)** फिर...?

रतनसिंह : आम-तौर से आपके दरबारे-ख़ास की बैठक हफ़्तावार होती है। अगली मरतबा आप लोग अपनी कोशिश से इस बैठक को तब तक जारी रखें जब तक नमाज़ की अज़ान न सुनाई पड़े। सुलतान को नमाज़ पढ़ने के वास्ते मसजिद न जाने दें। शाही महल के बाहर इर्द-गिर्द पहले से ही सौ दो-सौ मुस्तैद सिपाहियों को तैनात किया जाए। ज्यों ही मुअज्ज़िन की अज़ान सुनाई पड़े, उसी को इशारा तसलीम किया जाए। आपके बाज़ सिपाही, दरवाज़े पर तैनात पहरेदारों पर हमला करके उनका सफ़ाया कर दें और रफ़्ते-रफ़्ते भीतर चले आएँ और आप सब लोग सुलतान की खबर लें।

लम्हे भर के लिए ख़ामोशी।

सैयद : **(ख़ौफ़ज़दा आवाज़ में)** लेकिन इबादत जैसे पाक वक़्त पर एक मुसलमान का क़त्ल!

अमीर 1 : वह भी मुसलमान के हाथों?

रतनसिंह : आप ही ने तो फ़रमाया था कि जो शख़्स रिआया पर ज़ोरों-ज़बर्दस्ती करता है, वह मुसलमान कहलाने का हक़ नहीं रखता, और क्या आप लोग इस हक़ीक़त को नज़र-अंदाज कर देंगे कि इबादत के पाक वक़्त पर ही सुलतान ने अपने वालिद का क़त्ल कराया था?

अमीर 1 : लेकिन...?

रतनसिंह : **(चिढ़कर)** ठीक है, आपका जो जी चाहे करें। मेरी तजवीज़ में खता होने की गुंजाइश नहीं है और तरकीब भी आसान है। अगर इससे भी बेहतर तरकीब आपके पास हो तो पेश करें।

अमीर 2 : आप बजा फ़रमाते हैं, लेकिन...शाही महल के अन्दर हथियार कैसे ले जाएँगे? दरवाज़े पर ही तहक़ीकात की

जाती है।

अमीर 1 : हथियार पहुँचाने का ज़िम्मा मैं लेता हूँ।

अमीर 2 : तब तो कोई फ़िक्र नहीं है। (फिर जल्दी से) यही बेहतरीन तरकीब है। ऐसा ही होगा।

सब लोग कुछ कहना चाहते हैं। शहाबुद्दीन ख़ामोश खड़ा है, उसी वक़्त शम्सुद्दीन खड़े हो जाते हैं।

शम्सुद्दीन : (बुलन्द आवाज़ में) नहीं, हरगिज़ नहीं। यह नामुमकिन है।

सब लोग चुप हो जाते हैं।

शहाबुद्दीन : क्यों शेख़े-मोहतरिम ?

शम्सुद्दीन : इबादत का वक़्त निहायत पाकीज़ा होता है। ऐसे मुक़द्दस मौक़े पर इस तरह की हरकतों की इजाज़त नहीं। आप कोई और तदबीर अख़्तियार कर लें, मगर इबादत के वक़्त को नापाक करना गुनाहे-अज़ीम तस्लीम किया जाएगा।

अमीर 2 : एक मरतबा इबादत का वक़्त नापाक हुआ तो क्या हुआ ? उसी रात को दुबारा इबादत करके कफ़्फ़ारा कर लिया जाए।

शम्सुद्दीन : कफ़्फ़ारा इबादत नहीं होता। आप अपने पाक मक़सद को नज़र-अन्दाज़ न करें कि सुलतान को क़त्ल करने की तजवीज़ ज़ाती मतलब की ख़ातिर नहीं, बल्कि दीन की ख़ातिर की गई है।

अमीर 1 : दीन को बचाने की ख़ातिर बे-दीनी की इजाज़त क्यों नहीं दी जाती ?

शम्सुद्दीन : (काँपती हुई आवाज़ में) शरीफ़ शहाबुद्दीन, इन लोगों में आप ही एक अक़्ले-सलीम के मालिक हैं। मुझे यक़ीन है कि आप इस तरह की ग़ैर-मज़हबी हरकतों के लिए कभी राज़ी नहीं होंगे। इनकी कभी इजाज़त नहीं देंगे।

शहाबुद्दीन : (गोया सब कुछ गँवा चुका हो) आपका दीनो-मज़हब सिर्फ़ इबादत के वक़्त ही बा-ईमान होता है। लफ़्ज़े-दग़ाबाज़ी से जिसे सख़्त नफ़रत थी, आज उसके मज़बूत फ़ैसले को आपने तोड़ दिया, क़ाबिले-एहतिराम शम्सुद्दीन ! सुलतान की तरफ़ मेरी जो वफ़ादारी थी, आज आपकी नसीहतों की बदौलत ख़त्म हो गई। जिस चीज़ की न करने की मैंने

कसमें खायी थीं आज उसी पर मैं आमादा हो गया हूँ। ऐसा मैंने क्यों किया? महज़ आपकी खातिर...! जब इतना बड़ा गुनाह मुझसे सर-ज़द होने को है, तब इबादत के वक़्त को नापाक करने के मामूली जुर्म से क्यों घबराऊँ? (दूसरों से) अगर सुलतान का क़त्ल करने की तजवीज तय-शुदा है, तो रतनसिंह की बनायी हुई तरकीब बेहतरीन है। अब महज़ यह तय करना रह गया है कि हम आपस में कौन-कौन-सी ज़िम्मेदारियाँ संभालेंगे। (बहुत दुख भरी आवाज़ में, भीतरी चोट से तिलमिलाता हुआ) रतन, ये...ये...सब हमें करना ही होगा!

दृश्य : 6

शाही महल। नजीब और बरनी बैठे हैं। मुहम्मद परेशानी की हालत में चहल-क़दमी कर रहा है। सन्नाटा छाया हुआ है।

बरनी : (गोया खामोशी से घबरा गया हो) हुज़ूर! आप दोनों इस कदर खामोश क्यों हैं?

नजीब : (चिड़चिड़ाहट भरी आवाज़ में) तो क्या इल्मे-दीन पर तक़रीर की जाए?

मुहम्मद : (जैसे 'ख़ामोश रहो' कह रहे हों) नजीब!

फिर ख़ामोशी। थोड़ी देर के बाद दरबान दाखिल होता है।

दरबान : सुलतान का इक़बाल बलन्द रहे! दरबारे-खास के लिए उमरा ज़ाते-पाक की इजाज़त का इन्तज़ार कर रहे हैं।

मुहम्मद : (नजीब की तरफ़ देखता हुआ) हाज़िर हों!

दरबान जाता है। बरनी, नजीब खड़े हो जाते हैं। शहाबुद्दीन के साथ उमर दाखिल होते हैं। रसमी सलाम-आदाब चलते हैं।

उमरा : अल्लाह सुलतान को सलामत रखे!

नजीब इस पर मुसकरा देता है।

मुहम्मद : (ख़ुशी ज़ाहिर करते हुए) तशरीफ़ लाइए। तशवीश हो रही थी कि कहीं आप लोगों की आमद में देरी न हो।

अमीर 1 : क्यों हुज़ूर!

मुहम्मद : आज दरबार की कार्रवाइयाँ जल्द खत्म करनी हैं। हमने इमाम को कहला भेजा है कि आज की नमाज़ के लिए हम मसजिद आ रहे हैं। (उमरा ज़रा चौंक पड़ते हैं, फिर एक दूसरे को देखते हैं) आप लोगों को कोई ख़ास सलाह-मशविरा करना है ?

शहाबुद्दीन : ऐसा कोई ज़रूरी मसला पेश नहीं है हुज़ूर !

बाकी : हाँ, हुज़ूर।

मुहम्मद : ठीक है ! लेकिन हम दो मामलों के मुताल्लिक़ आप लोगों को आगाह करना चाहते हैं। यों तो बहस-मुबाहिसे के मामले ये नहीं हैं। फिर भी आम ऐलान करने से पहले हम चाहते हैं कि आप लोगों को भी मालूम हो जाय कि हमने अब्बासी ग़ियासुद्दीन मुहम्मद को अपने दरबार में आने के लिए दावत-नामा भेजा है।

अमीर 1 : ये कौन हज़रत हैं हुज़ूर ?

अमीर 2 : ख्याल नहीं होता हमने कभी यह नाम सुना हो।

मुहम्मद : इसके लिए शर्मिंदगी महसूस करने की कोई ज़रूरत नहीं है। अब्बासी ग़ियासुद्दीन कोई मशहूरो-मारूफ़ हस्ती नहीं है। वो ख़लीफ़ा-ए-अब्बासी ख़ानदान के नुमाइंदे हैं। कम-से-कम इस बिना पर वो तमाम मुसलमानों के लिए काबिले-एहतिराम हस्ती हैं।

बरनी : ये तो बड़ी खुश-ख़बरी है आलीजाह। खलीफ़ा ख़ानदान के मर्दे-मुजाहिद हमारे मुल्क में तशरीफ़ ला रहे हैं !

शहाबुद्दीन : सुलतान की होशियारी क़ाबिले-तारीफ़ है।

मुहम्मद : आपके लफ़्ज़ हमेशा गहरी चोट करते हैं। ख़लीफ़ा ख़ान-दान की एक हस्ती को अगर हमने दावत-नामा भेजा है तो तुम्हें उसमें हमारी मज़हबीयत, अक़ीदत या ईमान नज़र आना चाहिए था। इसमें तुम्हें हमारी होशियारी कैसे नज़र आ गई ? अगर तुम यह सोचते हो कि हमने महज़ नाखुश इमामों को खुश करने के लिए वह दावत-नामा भेजा है, तो यह तुम्हारा ग़लत ख्याल है।

शहाबुद्दीन : मेरा मंशा यह नहीं था...।

मुहम्मद : जब से शेख़ इमामुद्दीन का इंतकाल हुआ है, उसी रोज़ से एक सवाल ने मुसलमान मुझे परेशान कर रक्खा है। हम सुलतान हैं। शाही लिबास पहनते हैं। ऐलानिया अपने को

सुलतान भी क़रार दिया है। लेकिन क्या महज़ इस ज़ाहिरदारी से हम सुलतान कहलाने के हक़दार हो जाते हैं ?

सब ताज्जुब ज़ाहिर करते हैं।

हम सुलतान के फ़रज़ंद हैं, क्या इसीलिए हम सुलतान कहलाएँ ? रिआया, सिपाही सब लोग हमारे हुक्म की तामील करते हैं, महज़ इसी बूते पर हम अपने को सुलतान समझ लें ? महज़ ख़ुद-इत्मीनानी हमको सुलतान साबित कर सकती है ? मेरे मोतबिर अमीरो, आप ही फ़रमाएँ मुझे क्या करना है ! आपकी नज़र से मैं सुलतान कब से बनूँगा, कैसे बनूँगा ? कोई रविश बताएँ...।

सब ख़ामोश हैं।

नजीब : [भौं चढ़ाकर] हुज़ूर...।

मुहम्मद : आप सब खामोश हैं। कोई जवाब नहीं देता। बाक़ी तमाम लोग मुझे इस बात की नसीहत देते हैं कि मुझे क्या नहीं करना है, कोई यह हिदायत नहीं देता कि मुझे क्या करना है ! अब जब तक मेरे सवाल का जवाब नहीं मिलेगा तब तक हमें तख्ते-शाही को सँभालना ही होगा। शहाबुद्दीन, मगर इतने-भर से हमें तसल्ली नहीं होती। इसी वास्ते हमने दीन की ओर रुख़ किया है। ख़लीफ़ा की ख़ाके-पा की बदौलत शायद हमें वह सुकून हासिल हो जिसकी हमें अरसे से तलाश है।

सुलतान की बातों से शहाबुद्दीन के चेहरे पर कभी ताज्जुब और कभी इज्ज़त के भाव उभरने लगते हैं।

अमीर 2 : बहरहाल, ऐसे पाकीज़ा गौहर की आमद से दिल्ली की ख़ाक पाक हो जाएगी, हुज़ूर।

मुहम्मद : आपके ये बलन्द ख्याल सुनकर दिल भर आता है, मगर दिल भर आने से पहले ही इस बात से आपको आगाह कर दूँ कि ख़लीफ़ा के नुमाइंदे दिल्ली तशरीफ़ नहीं फ़रमाएँगे, वो तशरीफ़ लाएँगे दौलतबाद में।

शहाबुद्दीन : आलीजाह, मेरी एक दरख्वास्त है ! दारुल-सतलनत के तबादले की तजवीज़ को आप तर्क कर दें। दिल्ली के अवाम में इससे बड़ी बेचैनी पैदा हो रही है।

मुहम्मद : लेकिन हम क्या करते शहाबुद्दीन ? मैंने तमाम दलीलें पेश कर दी हैं। कितना समझाया है कि जब तक हम दिल्ली में रहेंगे, तब तक सलतनत को ख़तरा रहेगा। अगर दारुल-सलतनत मुल्क के मरकज़ में हो तो हुकूमत की कारंवाइयाँ बड़ी आसानी से अंजाम दी जा सकेंगी। लेकिन जिनकी ज़ेहनीयत पर ज़ंग लग चुका हो, उनको इल्म की रोशनी दिखाना बे-फ़ायदा है! ख़ैर, अब वो मसला ना-क़ाबिले बहस है। अब हमने इससे भी ज़्यादा इंक़िलाबी क़दम अख़्तियार करने की तजवीज़ की है। और इस मसले पर हम आप लोगों से भी राय तलब करेंगे। (दूसरों को कुछ कहने का मौक़ा न देकर) आइन्दा हमारी सलतनत में चाँदी के सिक्कों के साथ-साथ तांबे के सिक्के भी जारी होंगे।

अमीर 1 : तांबे के सिक्के, हुज़ूर! वह किस काम आएँगे?

मुहम्मद : जिस तरह चाँदी के सिक्के काम आते हैं। एक तांबे का सिक्का एक चाँदी के सिक्के के बराबर होगा।

शहाबुद्दीन : पर तांबे की कीमत चाँदी की बराबरी कैसे करेगी, हुज़ूर?

मुहम्मद : हमें यहाँ तांबे-चाँदी की क़ीमतों पर बहस नहीं करनी है। हमारे सामने सिर्फ़ सिक्कों का मसला है। सिक्का महज़ क़ीमत का पैमाना है जिसकी कोई ज़ाती क़ीमत नहीं होती। क़ीमत होती है शाही क़ानून की और शाही मोहर की। चाहे तांबा हो चाहे चाँदी, उसकी क़ीमत उसके अदा करने वाले पर मुनहसिर होती है। और ये बात महज़ क़ीमत की नहीं, बल्कि अक़ीदत की है। लोग जब पत्थर के टुकड़े को भी अक़ीदत की नज़र से देखते हैं, तो उसे ख़ुदा तक तसलीम करने को तैयार होते हैं, उसके लिए शानदार इबादत-गाह बनाते हैं और ख़ुद पथरीली-बंजर ज़मीन पर सो जाते हैं। आप लोगों ने ग़ौर नहीं फ़रमाया था कि...।

अमीर 1 : (दूसरे कान में) मैंने कहा नहीं था कि सुलतान यक़ीनन ख़ब्ती हो गए हैं!

मुहम्मद : कानाफूसी किस बात पर हो रही थी, अमीर!

अमीर 1 : कुछ नहीं आलीजाह! मैंने अर्ज़ किया कि ये बात बड़ी मुश्किल से लोगों के पल्ले पड़ेगी...।

मुहम्मद : अगर इतनी-सी बात थी तो साफ़ क्यों नहीं बताते?

(अमीर l खामोश रहा) लोगों को यक़ीन नहीं होगा, वे नहीं मानेंगे तो क्या आप लोग भी मेरा यक़ीन नहीं करते ? आप चाहे मुझे अहमक़ क़रार दें, मेरी शदीद नुक़्ताचीनी करें, लेकिन मुझे ना-क़ाबिले एतिबार न समझें। मैं शाही हुक्म के ज़रिए लोगों की वफ़ादारी हासिल कर सकता हूँ, मगर यक़ीन को कैसे हासिल करूँ ? तरीक़ा है, सबके आगे हाथ फैलाकर भीख माँगूं। (आजिज़ी के साथ) मुस्तक़बिल के मुतल्लिक़ मैंने अपने ख्वाबों में एक नयी दुनिया का तसव्वुर किया है जिसको हक़ीक़त में तबदील करना है। उसके लिए मैं आप लोगों की मदद चाहता हूँ। आपका एतिबार चाहता हूँ। अगर मेरी कारगुज़ारियाँ आप नहीं समझ पाते, तो मुझसे दरियाफ़्त कीजिएगा। मेरी बातों का मतलब नहीं समझ पाते, तो ज़रा सब्र कीजिएगा। मैं आप लोगों के आगे दो-ज़ानू होकर हाथ फैलाए इल्तिजा करता हूँ, मेरा साथ न छोड़िएगा।

दो-ज़ानू होकर बैठ जाता है।

शहाबुद्दीन : (कुछ कह नहीं पाता) हुज़ूर, आपकी खातिर हम सब कुछ करने को तैयार हैं। आप हमें हुक्म दें, यों इल्तिजा न करें।

मुहम्मद : क्या यह सच है ! आप सब यही कहते हैं ?

बाक़ी : हाँ हुज़ूर, हम सबका यही कहना है।

मुहम्मद : मैं यह सच मान लूँ तो आपको इस बात पर एतराज़ नहीं होना चाहिए कि क़ुराने-पाक छूकर क़सम खाएँ कि ता-ज़िंदगी मुझे आपकी मदद हासिल होती रहेगी।

दमघोट खामोशी। मुहम्मद उठता है, तख़्त के पास जाता है, फिर क़ुराने-पाक को हाथ से उठा कर सवालिया नज़र से सबको देखता है।

शहाबुद्दीन : आलीजाह, हम भी आपके लिए इस क़दर नाक़ाबिले-एतिबार हैं कि जब तक हम क़ुराने-पाक की क़सम नहीं खाएँगे तब तक हमारे वादे की सचाई का आपको यकीन नहीं होगा ?

मुहम्मद आँखें तरेरकर उसकी ओर देखता है, फिर सहसा उसके चेहरे की शिकनें नई सूरत अख़्तियार कर लेती हैं। चुपचाप क़ुराने-पाक को लेकर तख़्त के पास जाता है। और उस पर रख

देता है। उसी वक्त एक सिपाही दाखिल होता है।

सिपाही : सुलतान सलामत रहें, नमाज़ का वक़्त हो गया !

सब तन जाते हैं।

मुहम्मद : (धीरे से) हम लोग यहीं नमाज़ पढ़ेंगे।

सिपाही : जो हुक्म !

भीतर से मुअज्जिन की आवाज़ सुनाई पड़ती है।

आवाज़ : अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अशहदो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशहदो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशहदो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
अशहदो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
हैया इलस्सतात् ! हैया इलस्सतात् !
हैया इलल् फ़लाह ! हैया इलल् फ़लाह !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
ला इल्लाह इल्लिल्लाह...।

मुअज्जिन की अज़ान ज्यों ही शुरू होती है, मुहम्मद अपनी तलवार खोलकर तख़्त पर रख देता है। सिपाही किनारे जाकर इशारा करता है। फ़ौरन तीन-चार चाकर पानी के बरतन सब के आगे पेश करते हैं। सब रस्मी तौर पर वुजू करने लगते हैं। उसी दौरान बाहर से शोर-गुल, फिर मारकाट की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। फ़ौरन शहाबुद्दीन और अमीर लोग उठते हैं, अपने-अपने लिबास के भीतर छुपाए हुए हथियार बाहर निकाल लेते हैं।

बरनी : (घबराकर उठता है) या अल्लाह, यह क्या हो रहा है ?

अमीर लोग, बरनी और नजीब को धकेलते हुए तख़्त की ओर बढ़ते हैं। उसी वक्त तख़्त के पीछे से परदा सरका कर पन्द्रह-बीस हिन्दू सिपाही हाथ में भाले लिए दाखिल होते हैं। अमीर लोग घिर जाते हैं, जिनमें से दो-एक भागने की कोशिश करते हैं। तब तक और भी सिपाही दाख़िल होते

हैं। अमीर लोग खड़े हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों सिपाही भाला थामे नजदीक आते हैं, अमीर अपनी कटारों को नीचे फेंक देते हैं। सिपाही उन्हें पकड़ कर बाहर ले जाते हैं। शहाबुद्दीन को नहीं हटाते, उसके हाथ से हथियार छीनकर उसके बाज़ुओं को थामे वहीं खड़े हो जाते हैं। मुहम्मद की नमाज़ इस सारे हंगामे के दौरान जारी रहती है। आख़िर नमाज़ ख़त्म होती है, मुहम्मद सीढ़ियाँ उतरकर शहाबुद्दीन की तरफ़ बढ़ता है। थोड़ी देर तक कोई कुछ नहीं कहता।

शहाबुद्दीन : तुम्हें कैसे पता लगा ?

मुहम्मद : हक़ीक़त सुनोगे ?

शहाबुद्दीन : (व्यंग्य से) क्या तुम्हें ख़ौफ़ लगता है कि सुनाने पर मुझे सदमा पहुँचेगा ?

मुहम्मद : आज शाही महल के चिट्ठी-रसाँ ने एक अजीब ख़त हमारे हवाले किया था। बाकी ख़तों में हमारे लिए एक महज़ गाली-गलौज ही लिखा गया था, मगर एक ख़त में आप लोगों की आज की इस साज़िश की तफ़सील दर्ज थी। यों तो हम कोई ख़त नहीं पढ़ते। मगर यह ख़त एक और ही बात के लिए इतना अहम था क्योंकि यह गुमनाम नहीं था। लिखने वाले का नाम ख़त में नीचे साफ़ दर्ज था... रतनसिंह !

शहाबुद्दीन : (हँस कर) मुहम्मद, तुम्हारे दिमाग़ को कोई नई तदबीर हाथ नहीं लगी। चाहो तो बरनी से दरियाफ़्त कर लो, तवारीख़ में ऐसी घिसी-पिटी हरकतें हज़ारों सुलतानों ने हज़ारों मरतबा की होंगी। रतनसिंह की फ़ितरत से मैं तुम से ज़्यादा वाक़िफ़ हूँ। यह मत समझो कि मैं तुम्हारे ख़्याली क़िस्से पर यक़ीन करूँगा।

मुहम्मद : मौत के मुंतज़िर को झूठा क़िस्सा सुनाने की क्या ज़रूरत पड़ी है ?

शहाबुद्दीन के चेहरे पर से हँसी ग़ायब हो जाती है। मुहम्मद कमीज के भीतरी हिस्से से एक ख़त निकाल कर उसकी आँखों के आगे कर देता

है, जिसे देखकर शहाबुद्दीन एकदम पस्त हो जाता है।

शहाबुद्दीन : (भर्राई आवाज़ में) ये भी दर्ज किया है कि उसने ऐसा क्यों किया ?

मुहम्मद : नहीं।

नजीब : (चिढ़ाने के लहजे में) वजहों की क्या कमी है ? उसने शायद इसलिए ऐसा किया होगा कि शहाबुद्दीन के वालिद ने उसके वालिद को क़त्ल करा दिया था ! या इसी बात पर बरहम होकर उसने यह इंतिक़ाम लिया होगा कि शहाबुद्दीन ने उसके साथ बिरादराना सलूक करके उसके भीतरी दुश्मनी के जज़्बे को बेकार बनाने की कोशिश की है।

मुहम्मद : हमने उसके लिए अपने सिपाहियों को भिजवाया था, मगर वह फ़रार हो चुका है। (ज़रा रुक कर) अब हम एक सवाल पूछ सकते हैं ? आख़िर···आख़िर तुम भी क्यों मेरे ख़िलाफ़ बाग़ी हो गए ? मैंने क्या गुनाह किया था ?

शहाबुद्दीन : 'क्यों' का कोई जवाब नहीं। अगर मैं बताऊँगा भी तो तुम उसे समझ नहीं सकते।

मुहम्मद : (रुक-रुक कर) मैं समझ नहीं सकता या तुम समझा नहीं सकते ?

शहाबुद्दीन : (झुंझलाहट बढ़ती है) क्यों बे-मतलब बातें बना रहे हो, मुहम्मद ? मुझे ख़त्म करने के लिए तुम्हारे हाथ नहीं उठते ? सुनो मुहम्मद, तुम मुझे ज़िन्दा नहीं छोड़ सकते। मैं कोई आईन-उल्-मुल्क नहीं हूँ कि ता-जिंदगी सर झुकाए तुम्हारे रहमो-करम पर पड़ा रहूँ !

मुहम्मद धीरे-धीरे म्यान से कटार निकालता है।

शहाबुद्दीन : (घबराहट से जूझता हुआ) तलवार के एक ही वार से तमाम सवालों का हल निकालने की आदत जो ठहरी, लेकिन इस बग़ावत की आग को तुम अब दबा नहीं सकते। मेरे वालिद को पहले ही तुम पर एतबार नहीं था। अब तो मैंने सारा हाल मुफ़स्सिल बता दिया है।

नजीब : (चिढ़ाने के लहजे में) बेकार ज़हमत उठायी। तुमने अपने वालिद को जो भी ख़त लिखे थे, सब को रतनसिंह ने शाह सुलतान के पास पहुँचा दिया है।

शहाबुद्दीन : (चीख़ता हुआ) मगर तुम्हारा सुलतान मेरी मौत को कैसे दबा सकेगा ? मेरी रूह की आवाज़ को कोई क़त्ल नहीं कर सकता। यह आग अब भड़क कर रहेगी। तुम चाहे मुझे क़त्ल कर दो, लेकिन तुम्हारी तबाही भी लाज़मी है।

काँप जाता है। मौत के मुताल्लिक़ सोचने से बचने के लिए ज़ोर-ज़ोर से बोलता जाता है।

मुहम्मद : (धीमी आवाज़ में) एक लफ़्ज़ से तेरा क़िस्सा पाक किया जा सकता है। लेकिन...।

कटार भोंकता है। पहली ही चोट से शहाबुद्दीन बेजान हो जाता है। इसे जानते हुए भी मुहम्मद लगातार कटार से चोट करता ही जाता है। चेहरे पर, सीने पर, हाथों पर, पाँवों पर... चोटों का सिलसिला जारी रखता है। शहाबुदीन की लाश ख़ून से लथपथ हो जाती है। उसको थामे हुए सिपाही भी ताव न ला सकने की वजह से मुँह फेर लेते हैं।

बरनी : (इस क्रूरता को न सह सकने की स्थिति में) सुलतान ! वो मर चुका है।

मुहम्मद बेदार-सा होकर पीछे हटता है, फिर एकाएक नफ़रत से भरकर हथियार फेंक देता है।

मुहम्मद : (शदीद ग़मगीन होकर) ऐसा क्यों होता है बरनी ! जिन पर हम यक़ीन करते हैं आखिर वे ही लोग बाग़ी क्यों हो जाते हैं ? तवारीख़ की यह कैसी उलझी हुई पहेली है ? बरनी, क्या हमारी हुकूमत का यही अंजाम होगा कि वो रात की तारीकी को चीरकर खो जाने वाली ख़ौफ़-ज़दा चीख बनकर रह जाए ?

उसके हाथ काँपने लगते हैं। नजीब सिपाहियों को इशारा करता है, जो शहाबुद्दीन की लाश को चटाई पर लिटा कर चले जाते हैं। मुहम्मद शहाबुद्दीन की लाश पर नज़र गड़ाये खड़ा रहता है।

मुहम्मद : नजीब, इस साज़िश में शरीक तमाम लोग सूली पर चढ़ा दिए जाएँ। कल सुबह तक उनकी लाशों में भुस भरकर

उन्हें शाही महल के आगे लटका दिया जाए और आठ दिनों तक वह इसी तरह टँगी रहें। उसके बाद शहर के शाही रास्तों के वीच उन लाशों की नुमाइश की जाए। अवाम को यह अच्छी तरह मालूम हो जाए कि बाग़ियों की क्या सज़ा होती है! इस बग़ावत से तअल्लुक़ रखने वाले हर शख्स को मौत के घाट उतार दो! शेख शम्सुद्दीन को भी माफ़ न किया जाए।

बरनी : इससे क्या फ़ायदा होगा हुजूर ? क्या हासिल होगा ?

नजीब : पहली मरतवा वरनी ने कोई समझदारी की बात कही है, हुज़ूर! शहाबुद्दीन के वालिद को हम नज़र-अंदाज़ नहीं कर सकते! आखिर उसके साथ किस तरह का सुलूक होगा ? अगर वो हमारे खिलाफ हो गया तो बाक़ी सरदार भी उसके साथ हो जाएँगे।

मुहम्मद : शहाबुद्दीन के वालिद को कुछ वताने की जरूरत नहीं है, नजीब। कल ही शहर भर में मनादी करवा दो कि शाही महल में एक नाकाम दंगा हुआ, जिसमें बाज़ अमीरों ने इबादत करते हुए सुलतान को क़त्ल करने की कोशिश की! लेकिन वफ़ादार शहाबुद्दीन ने अपनी जान पर खेल-कर सुलतान की जान बचा ली और सुलतान की सलामती की ख़ातिर अपनी ज़िंदगी क़ुरवान कर दी! फिर शहा-बुद्दीन के वालिद को हमारी तरफ़ से शाही दावतनामा भिजवा दो कि वो अपने दिलेर फरज़ंद शहाबुद्दीन के जनाज़े में शरीक होने के लिए दिल्ली तशरीफ लाएँ। शाही रस्म के साथ मरहूम को दफ़न किया जाएगा। इस मौक़े पर वो ज़रूर हाज़िर हों, और नजीब, उनके आने पर दिल्ली में उनका वड़ा शानदार इस्तिक़बाल हो, उनके बेटे का जनाज़ा बड़ी धूम-धाम से उठे। रिआया को यक़ीन हो जाए कि मेरी जान बचाने की कोशिश में ही शहाबुद्दीन का इंतिक़ाल हुआ है।

बरनी : मरे हुए लोग भी आपकी सियासी शतरंज के कार-आमद मोहरे बन जाते हैं सुलतान !

नजीब : आलीजाह, यहाँ के वाक़यात को पोशीदा रखने के वास्ते यह ज़रूरी है कि यहाँ पर तैनात हर सिपाही का मुँह बन्द किया जाए। उस सूरत में शायद लाशों का अंबार लग

जाए। लेकिन आप बेफ़िक्र रहें। हमारे पास न सूलियों की कमी है, न जगह की। सिर्फ़ आपके हुक्म की देर है...।

मुहम्मद : और भी दो काम अंजाम देने हैं, नजीब। फ़ौरन ऐलान कर दो कि दिल्ली की रिआया दौलताबाद जाने के लिए तैयार हो जाए। एक महीने के अन्दर-अन्दर तमाम दिल्ली ख़ाली हो जाए। कोई भी शख़्स यहाँ पीछे न रह जाए। अब कोई भी यहाँ हमारे रहमो-करम से फ़ैज़याब नहीं होगा। ऐलान कर दो कि दिल्ली के किसी भी घर की खिड़की से रोशनी नज़र न आए! किसी भी घर की चिमनी से धुआँ न निकले। ये दिल्ली वीरान हो जाए, तभी मुझे तसल्ली होगी...।

बरनी : या ख़ुदा, अहले-दुनिया को सलामत रख!

मुहम्मद : ख़ुदा की इबादत अभी कर लो, बरनी। फिर मौक़ा नहीं मिलेगा।

बरनी चौंककर देखता है।

: बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँधी थीं कि तख़्त-नशीन होंगे तो मिसाली हुकूमत क़ायम करेंगे। चाहते थे हमारी सलतनत में हर काम एक इबादत होगा, हर इबादत इल्म की एक सीढ़ी होगी और हर सीढ़ी ख़ुदा को पाने का ज़रिया होगी...लेकिन यहाँ इबादत में भी सियासत की बू आती है, बरनी (जैसे जज़्बात की गिरफ्त में मसला गया हो) अब इस ना-पाक इबादत को ही जिला-वतन कर दूँगा (ज़रा रुककर, फिर सख़्त आवाज़ में) नजीब, अब से हमारी सलतनत में इबादत बन्द हो जाए। ऐलान कर दो कि आज से इबादत करने की सज़ा मौत होगी। इबादत की क़ाबलियत हम खो चुके हैं। सबको ख़बरदार करो कि आइन्दा इबादत की घड़ी मुल्क की शाह-राहों में ख़ामोशी ओढ़े आए और बग़ैर अपना निशान छोड़े चली जाए।

नजीब : लेकिन ख़ुदावंद अगर हमेशा के लिए इबादत की मनाही कर दी गई तो मुल्क के सैयदों और इमामों को बग़ावत करने का एक बहाना मिल जाएगा। इसके बदले में ऐलान करा दूँगा कि जब तक हमारी सलतनत में ख़ुश-क़दम ख़लीफ़ा ग़ियासुद्दीन अब्बासी की मुबारक आमद नहीं होती, तब तक इबादत नहीं होगी। इबादत के पाक वक़्त

को जो ना-पाक किया गया है, उसका कफ़्फ़ारा इसी तरह चुकाया जाएगा। (हँसकर) अब कौन जानता है कि मुअज़्ज़म ग़ियासुद्दीन कब तशरीफ़ लाएँगे। पता नहीं उनको यहाँ पहुँचते-पहुँचते कितने दिन गुज़र जाएँगे और इससे एक अजीबो-गरीब वाक़या पेश होगा।

मुहम्मद जवाब नहीं देता। नजीब बन्दगी करने के बाद चला जाता है। बरनी सुबकने लगता है। मुहम्मद शहाबुद्दीन की लाश पर नज़र गड़ाए खड़ा रहता है। बरनी हैं, तख़्त पर रखे क़ुरान-शरीफ़ पर डाले गए रेशमी कपड़े को उठाता है और इससे शहाबुद्दीन की लाश को ढक देता है, लेकिन मुहम्मद उसे हटा फेंकता है।

मुहम्मद : नहीं बरनी, लाश खुली रहे, ज़ख्मों से गुलनार यह हसीन जिस्म सबको देखने दो।

ढिंढोरची 1 : सुनो, सुनो, दिल्ली के बाशिंदो...! सुनो...। खुदावंद शाहेशाहान बड़े अफ़सोस के साथ ऐलान करते हैं कि कल शाम को शाही महल में बग़ावत हो गई। बाज़ बे-दीन, बेईमान अमीरों ने इबादत के वक़्त मेहरबान सुलतान को क़त्ल करने की कोशिश की, लेकिन संपन शहर के जाँ-बाज़ शहाबुद्दीन ने अपनी जान पर खेल कर सुलतान की जान बचा ली। इस पर बद-नीयत अमीरों ने वफ़ादार शहाबुद्दीन को धोखे से मार डाला। अमीरों की बग़ावत तो नाकाम हो गई...मगर वफ़ादार और बे-नज़ीर शहाबुद्दीन की मौत से हक़-पसन्द सुलतान और उनकी रिआया निहायत ग़मगीन है। कल सुबह के वक़्त शहाबुद्दीन को शाही एहतमाम के साथ दफ़्न किया जाएगा। ऐसे मौक़े पर शाहे-सुलतान उम्मीद करते हैं कि दिल्ली का हर ख़ासो-आम वहाँ मौजूद होगा और मरहूम की जानिब अक़ीदतमंदी का इज़हार करेगा।

इसके साथ ही सुलतान ने ऐलान किया है कि जाँ-बाज़ शहाबुद्दीन को दफ़्न करते वक़्त जो इबादत होगी वह हमारी सलतनत में होने वाली आख़िरी इबादत मानी जाएगी। सुलतान फ़रमाते हैं कि इबादत के वक़्त को ना-पाक करने की वजह से हमारी सलतनत को बद-दुआ लग गई है। अब जब तक इस बद-दुआ का असर हम पर रहेगा तब तक इबादत करना जुर्म माना जाएगा। जब तक क़ाबिले-एहतिराम ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा

हमारे मुल्क में आकर हमें बद-दुआ के असर से निजात नहीं दिलाएँगे तब तक हम ख़ुदा का रहमो-करम हासिल करने के लायक़ नहीं है। इस दरमियान जो भी इबादत करेगा, उसे सज़ाए-मौत दी जाएगी। सुनो! सुनो...।

ढिंढोरची 2 : सुनो...सुनो...दिल्ली के बाशिंदो! सुनो। खुदावंद शाहे-शाहान का फ़रमान सुनो!

दिल्ली का हर बाशिंदा अभी से दौलताबाद जाने के लिए तैयार हो जाए। एक महीने की मोहलत दी जाएगी, उसके बाद दिल्ली में एक भी इन्सान नज़र नहीं आएगा। जो शख्स यहीं रहने या दौलताबाद की बजाए दूसरे सूबे में जाने की कोशिश करेगा, उसे सख्त-से-सख्त सज़ा दी जाएगी। दौलताबाद जाने वालों को रास्ते-भर हर सहूलियत मुहैया की जाएगी। रास्ते में जगह-जगह पर दवाख़ाने खोले जाएँगे। खाने-ठहराने के वास्ते सराय होंगी, पहनने के लिए कपड़े दिए जाएँगे। अब इतनी सहूलियतें मिलने के बाद भी अगर उनका सही फ़ायदा नहीं उठाया गया तो इसे सुलतान की तौहीन माना जाएगा। ऐसे लोगों को अगर सज़ा दी गई है तो ग़ैर-मुनासिब नहीं होगी। इसलिए हक़-पसंद सुलतान रिआया से दरख्वास्त करते हैं कि कोई भी शख्स ना-फ़रमानी की जुर्अत न करे और महीने के अन्दर-अन्दर दौलताबाद पहुँचने की कोशिश करे।

सुनो...! सुनो...!

दृश्य : 7

दिल्ली से दौलताबाद जाने का रास्ता। आजम और अज़ीज़ एक खेमे के सामने बैठे हैं। अज़ीज़ अब भी बिरहमन की सूरत बनाये हुए है। एक औरत अजीज के पाँव पकड़े रो रही है।

हिन्दू औरत : अल्लाह तुम्हें बरकत दे, मुझ पर ज़रा तो रहम करो। मुझे लम्हे-भर के लिए जाने दो! बच्चा मरा जा रहा है। सिर्फ़ आज के लिए इजाज़त दो।

अज़ीज़ : क्या किया जाए? हम भी मजबूर हैं। सुलतान का हुक्म है कि दौलताबाद पहुँचने तक किसी को इधर-उधर मत जाने दो। अब तुम चाहती हो कि हम ना-फ़रमानी करें?

हिन्दू औरत : वादा करती हूँ, कल ही मैं वापस आ जाऊँगी। मेरी क़सम ले लो, बच्चे की क़सम ले लो। मुझे जाने दो वरना बच्चा मर जाएगा! तुम मालिक हो...एक दिन की इजाज़त दे दो। बच्चे को जल्द-से-जल्द औलिए को दिखा लाऊँगी।

अज़ीज़ : बेकार परेशान कर रही हो! औरत, अगर तेरा बच्चा मर रहा है, तो हम क्या कर सकते हैं। उस ख़ेमे में जाओ, हकीम बैठे हैं, जो भी जरूरी है दवा-दारू करेंगे। मगर तुम नहीं मानतीं और अपनी रट लगाए बैठी हो। अब हम क्या कर सकते हैं? (आवाज को दबाकर) सुना नहीं, हमारे जो बड़े कारिंदा हैं, उनको दो-तीन अशर्फ़ियाँ चढ़ा दे तो सब काम बन जाएँगे।

हिन्दू औरत : लेकिन मैं अशर्फ़ी कहाँ से लाऊँ सरकार? जो चार पैसे पास हैं, अगर उन्हें दे दिया तो औलिया को कहाँ से दूँगी? अपना गुज़ारा कैसे करें? इधर मेरा आदमी भी बीमार पड़ा है।

अज़ीज़ : तो फिर कुछ नहीं हो सकता...हरगिज़ नहीं हो सकता। अब बस, अब चली जाओ, हमारे बहुत काम पड़े हैं। ये चीख़-पुकार अपने ख़ेमे में ज़ारी रख।

औरत सुबकती चली जाती है।

आज़म : बेचारी! अरे यार, इस क़दर संग-दिल हो! जाने क्यों नहीं देते? बेचारी रो-रोके कह रही है कि बच्चा मरा जा रहा है। शायद औलिया कुछ देर कर दे।

अज़ीज़ : तुमने देखा है बच्चे को? मैं बच्चे की बीमारी से वाक़िफ़ हूँ। मेरा छोटा भाई ऐसी ही बीमारी का शिकार था। लाख कोशिश करो, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अब हराम-ज़ादा औलिया सेंत-मेंत करके पैसा अपनी अंटी में भर लेगा। बच्चा तो बचेगा नहीं। तब औलिया को क्यों मिले पैसा? हम ही क्यों न लें? अगर हम नहीं लेते तो पैसा औरत के पास ही रहने दो।

आज़म : तुम भी हद करते हो। ज़रा-से दो पैसे के पीछे पड़े हो...।

अज़ीज़ : कान खोलकर सुनो आज़म। चार-पाँच रोज़ में तुम्हें पता लग जाएगा कि एक-एक पैसे की क्या क़ीमत है!

ग़लीज़ कपड़ों में उतरती उम्र का एक शख़्स अपनी औरत और आठ-बच्चों के साथ दाख़िल होता है, जिन्हें देखते ही अज़ीज़ अपने सामने की फ़ेरिहस्त पर सिर झुका लेता है।

अज़ीज़ : अभी कौन-कौन बाक़ी हैं...और तीन घर...पता नहीं, ये कब मरेंगे! (सिर उठाकर शख़्स की तरफ़ घूर कर देखने लगता है)...ओह, आख़िर आ गए! जानते हो कितनी देर हुई? तुम्हें पता नहीं था कि शाम होने से पहले इस मुक़ाम पर पहुँचना है।

शख़्स : अब मैं क्या करता हुज़ूर, आधे रास्ते में दो लाशें मिलीं। बेचारे चलते-चलते मर गए होंगे। उन्हें दफ़्ना के आ गया।

आज़म : न जाने किसकी लाशें थीं...मुसीबतज़दों की...।

अज़ीज़ : दफ़न करने से पहले देखा भी था या नहीं कि लाश हिन्दू की थी या मुसलमान की ?

शख्स : अब देखने की फुरसत किसे थी हुज़ूर, जो हो सका सो किया।

अज़ीज़ : यानी तू हमें मुसीबत में फँसा देगा। अगर वो लाशें हिन्दू की साबित हुईं तो...? क्या तुझे शाही हुक्म का पता नहीं कि हिन्दू-मज़हब के साथ कोई बेइन्साफ़ी नहीं होनी चाहिए ?

शख्स : पता नहीं था, हुज़ूर! ग़लती हो गई! मुझे ख्याल ही नहीं आया। मैंने सोचा कि दिल्ली में रहते जो गुनाह किये थे, उनका बोझ कुछ तो हल्का हो जाए।

अज़ीज़ : दिल्ली में क्या करते थे ?

शख्स : कुफ़्र का धन्धा हुज़ूर! सुलतान के हुक्म से जिनको सूली पर चढ़ा दिया जाता था, उनकी लाशों को शाही महल के फाटक पर लटका दिया जाता था। मैं उनकी चौकसी करता था हुज़ूर। जब नई लाशें आतीं, तो पुरानी लाशों को वहाँ से हटाकर शहर के बाहर नहर में फेंक आता था। वहाँ भी इन लाशों की रखवाली करनी पड़ती थी। मालिक, नहीं तो मरने वालों के रिश्तेदार आते, लाशें चुरा ले जाते।

आज़म : (मुँह बनाते हुए) लाशें चुराना...छी...!

शख्स : आप नहीं जानते हुज़ूर! सुलतान का हुक्म है कि वग़ैर रक़म लिए किसी को लाश न दी जाए। अगर सबके हुक्म की तामील करते तो हम भी मकान बनवाते और मज़े से रहते। मगर ये रिश्तेदार बड़े कंजूस होते हैं हुज़ूर! रक़म देते उनकी नानी मर जाती है। इसलिए अँधेरी रात में लाशें चुराते हैं। बड़े-बड़े पैसे वालों का भी यही हाल है हुज़ूर। धत! ये इन्सान एक मरतबा अगर चोरी शुरू कर दे तो फिर किसी का लिहाज़ नहीं करता है हुज़ूर। तभी तो बुज़ुर्ग लोग कहते हैं कि चोरी और सीना-ज़ोरी हम-साया हैं।

अज़ीज़ आज़म की तरफ़ देखकर मुसकुराता है। आज़म नाक-भौं सिकोड़ता है।

अज़ीज़ : ख़ैर, तेरे आठों बच्चे सलामत हैं कि नहीं ?

शख्स : हैं, हुजूर।

अज़ीज़ : तो चलो अपने खेमे में और कोई चाहे जिये या मरे, तुम जैसे को नहीं मरना चाहिए। सुलतान को तुम जैसी हस्तियों की निहायत ज़रूरत है। लेकिन जब तक सुलतान दौलताबाद नहीं पहुँचेंगे तब तक तुम क्या शुग़ल करोगे ? और भी एक-दो बच्चे...।

शख्स : नहीं हुजूर, उससे पहले मैं इस औरत से शादी कर लेना चाहता हूँ।

आज़म : (नफ़रत से) क्या ?

शख्स : हाँ, हुजूर, दिल्ली में मौक़ा ही नहीं मिला।

आज़म : (दोनों हाथ उठाकर) अच्छा, अच्छा, अब चलो अपने डेरे पर। (सब चले जाते हैं) किस ख़दर ग़लीज़ इन्सान है ये ? और दो-तीन लम्हे बातें करता तो शायद मुझे क़ै हो जाती !

अज़ीज़ : मैं तो ऐसे लोगों का लोहा मानता हूँ। हक़ीक़त में ऐसे ही लोग सही मानों में संजीदा होते हैं।

आज़म : मुझे बेचारी वो औरत याद आ रही है। महज़ दो पैसे के लालच में उसे औलिया के पास जाने से रोक दिया। अगर रक़म के इस क़दर लालची हो तो मुझे बताओ, अभी मैं जाकर किसी मालदार मुर्ग़े पर हाथ साफ़ कर देता हूँ। मेरे हाथ भी तब से खुजला रहे हैं।

अज़ीज़ : अरे यार, किसी भी सूरत में यहाँ चोरी मत करना। अगर कहीं फँस गए तो हमारी क़िस्मत ही चौपट हो जाएगी।

आज़म : अरे हटो, हमारी भी कोई क़िस्मत है ? आज यहाँ तो कल वहाँ। चोरी करते अगर रंगे हाथ पकड़े भी गए तो हाथ ही तो कटेंगे। तब भीख माँग के गुज़ारा कर लेंगे।

अज़ीज़ : तुम्हारी अक़्ल पर मुझे तरस आता है। इतने रोज़ तुम दिल्ली में रहे तब भी चोरी की हद से आगे नहीं बढ़े। अब मेरी तरफ़ देखो, दिल्ली में गुज़ारे गये इन तीन महीनों में मैंने क्या-क्या नहीं देखा और मेरे साथ क्या-क्या नहीं बीता ? अब तो ज़िन्दगी की रविश ही बदल गयी। देहात में मैले-कुचैले कपड़े उठाए, दर-दर फिरा करता था। वो भी कोई ज़िन्दगी थी ! न कोई तमन्ना...न ख्यालात, बस घिसटती-फिसलती ज़िन्दगी बीत रही थी।

मगर यहाँ दिल्ली में आकर मेरे होश उड़ गये। मैं जादू सीख गया आज़म, चार हरफ़ों का जादू...सि...या...स...त! सियासत! कैसी जादुई दुनिया छुपी हुई है इन चार हरफ़ों में! सच कहता हूँ आज़म, यह दुनिया सिर्फ़ अक़्लमंदों के लिए होनी चाहिए थी मगर अफ़सोस, यह अहमक़ों से भरी पड़ी है। वहाँ देहात में फटे-चीथड़ों के पीछे जो होशियारी लगाई जाती थी, बस उतने-भर का तुम यहाँ इस्तेमाल कर लो तो क्या से क्या हो जाओगे। बड़ी-से-बड़ी हैसियत हासिल कर सकोगे! अज़ीम-से-अज़ीम रुतबा तुम्हारी मुट्ठी में होगा।

आज़म : बस बस, खुद बचाए यहाँ की सियासत से। चोरी में अगर कुछ ख़ता हुई तो सिर्फ़ हाथ कटेंगे। मगर इस सियासत में सर की ही ख़ैर नहीं।

आज़म : सर की ख़ैर चाहते हो तो सर बचाने का हुनर भी जान लेना चाहिए। मगर अपना सर इस फ़ासले पर रखो कि छः कदम वो आगे रहे।

आज़म : छः कदम!

अज़ीज़ : इसलिए कि अगर तुम्हारे पीछे वाले की लाश ही गिर जाए तो वो तुम पर न गिरे।

आज़म : ओह!

अज़ीज़ : ओह क्या, आँखें खोले रखो आज़म! चोरी, उठाई-गीरी का धन्धा अब छोड़ दो। उसमें कोई मज़ा नहीं। वो तो पागलपन है...निरा पागलपन।

आज़म : सिर्फ़ चोरी करो तो पागलपन कहते हो मेरी दादीजान को तुम नहीं जानते, साठ पर पहुँचते-पहुँचते क़रीब बीस लोगों को कुल्हाड़ी से हलाक कर दिया था।

अज़ीज़ : (ऊब कर) देहात वाले चुप रह गये?

आज़म : नहीं, बड़ी हिम्मत करके दादी को पकड़ने के लिए आए, एक-दो आदमी नहीं, पूरे छः लोग, हट्टे-कट्टे। घर के दरवाज़े तक आ पहुँचे। ज्यों ही घर के भीतर क़दम रखा तो दादीजान के सर पर चुड़ैल सवार हो गई। हाथ में कुल्हाड़ी सँभाले बाहर आ गईं। दादीजान की इस डरावनी सूरत को देखकर सब डर कर तितर-बितर हो गए। लेकिन हमारी दादीजान क्यों रुकतीं? नदी के

किनारे तक उन लोगों का पीछा किया। बेचारे डर के मारे नदी में कूद पड़े। दादीजान तैरना नहीं जानती थीं सो सब बच गये।

अज़ीज़ : तो फिर तुम्हारी दादीजान का क्या हुआ ?

आज़म : तब फिर मेरी दादी माँ ही क्यों कहलातीं ? उन छः लोगों के पीछे वो भी कूद पड़ीं। फिर अब तक वापस नहीं आईं !

अज़ीज़ : यानी तुम्हारे ख़ानदान में बड़े-बड़े छुपे रुस्तम हैं।

आज़म : अरे सुनो तो, मेरे एक काका औलिया क़िस्म के आदमी थे और मौलवी भी हो गए। कभी दूसरे के ज़ेवरों को उन्होंने हाथ नहीं लगाया। मैं गये साल उनसे मिलने गया था, घंटे भर नसीहत पिलाते रहे, और नसीहतें देने के दौरान उनके दोनों हाथ मेरे दाएँ हाथ को कसकर पकड़े हुए थे।

अज़ीज़ : इसका मतलब है, तुम पर उनकी बड़ी शफ़क़त रही है।

आज़म : ख़ाक शफ़क़त ! उनको इस बात का अंदेशा हो गया था कि तकिया के नीचे छुपायी हुई रक़म को कहीं मैं उठा न ले जाऊँ। उन्हें यह मालूम था कि तकिया के नीचे वाली रक़म की बात मुझे मालूम है।

अज़ीज़ : बड़ा शातिर है !

आज़म : (ठहाका लगाते हुए) शातिर ! शातिर तेरा सिर ! जब मैं उसके घर से बाहर निकला, तो मेरे हाथ उनकी रक़म का थैला लग चुका था। क्यों ? बाएँ हाथ से चुरा लिया था...बाएँ हाथ से !

औरत के रोने की आवाज़।

आज़म : हाय बेचारी ! लगता है बच्चा चल बसा। अब अगर दौलताबाद पहुँचने के बाद उसने तुम्हारे ख़िलाफ़ फ़रियाद कर दी तो, तुम क्या जवाब दोगे ? शायद उस हालत में तीन रोज़ इसी ग़लीज़ काफ़िर के साथ काटना पड़े।

अज़ीज़ : (इर्द-गिर्द देखकर) सुनो, दौलताबाद पहुँचने से पहले ही हमें सुलतान की ये मुलाज़िमत छोड़ देनी पड़ेगी, समझे ? दिल्ली में मुझे खबर मिली थी कि सुलतान चाँदी के सिक्के की बजाए तांबे के सिक्के चलाना चाहते हैं। एक तांबे के सिक्के की क़ीमत एक चाँदी के सिक्के के बराबर ही तसलीम की जाएगी। क्यों ? क्या सोच रहे हो ?

आज़म : बड़ी बुरी ख़बर है। तांबे के सिक्के चुराने में अब क्या मज़ा आएगा ?

अज़ीज़ : पूरी बात तो सुन लो। दौलताबाद पहुँचते ही हम यह मुलाज़िमत छोड़कर सिक्का बनाने का हुनर सीखेंगे। अपने हाथों की खुजली का वहाँ इलाज करना। एक दो महीने में ही इसके मुताल्लिक़ शाही फ़रमान का ऐलान होने वाला है। तब जुट जाना जाली सिक्के बनाने में। दौलत ही दौलत बटोरते रहोगे। (पीछे से चहल-पहल की आवाज़) अब सँभल जाओ, बाक़ी लोग भी आ गये।

दृश्य : 8
(ई० 1331)

दौलताबाद के क़िले का ऊपरी हिस्सा जहाँ दो पहरेदार तैनात हैं—एक जवान, दूसरा उतरती उम्र का। रात का वक़्त है।

जवान : अब क्या वक़्त होगा, काका ?

काका : होगा, कोई रात का दूसरा पहर !

जवान : बस ? अभी दूसरा ही पहर ! पहरेदार होने से पहले रात कितना जल्द भागती थी ! शाम को दिया जलाने से लेकर सुबह को मुर्गे की बाँग होने तक वक़्त छलाँग लगाए खिसक जाता था। लेकिन अब यह मनहूस रात कटती ही नहीं।

काका : जिसे सुबह का इंतज़ार हो, उसे रात लम्बी लगेगी ही। दो-चार दिन और बेटे, तब शायद तुम्हें रात-दिन के अलगाव का एहसास भी न हो। असल पहरेदार वो है जिसके ख़ून में ही सुबह की उम्मीद ख़त्म हो गई हो।

जवान : (क़िले की दीवार के किनारे तक जाकर) बाप रे ! कितना ऊँचा क़िला है ! सर चकरा जाता है।...काका, क्या वही है दौलताबाद से दिल्ली जाने का रास्ता जो यहाँ से सफ़ेद रस्सा जैसा नज़र आता है ?

काका : हाँ।

जवान : हक़ीक़त में अजगर-सा चौड़ा रास्ता होगा, लेकिन यहाँ से बिलकुल पतला साँप-सा दिखाई देता है।

काका : चार बरस हो गये, न जाने तब इस अजगरी रास्ते ने कितनी जानें हज़्म कर ली होंगी ! अब बिलकुल ख़ामोश पड़ा है।

जवान : यह क़िला भी शानदार है। सुना है कि ग़ैर-मुल्कियों की राय में यह क़िला दुनिया भर में अपना कोई सानी नहीं रखता। और कहा जाता है कि इस क़िले को कोई फ़ौज तोड़ नहीं सकती।

काका : हाँ, कोई फ़ौज नहीं तोड़ सकती। अगर टूटेगा तो अपनी अन्दरूनी कमज़ोरियों से ही। लेकिन बेटे, क़िला चाहे जितना भी ऊँचा हो, चाहे जितना भी मजबूत हो, मगर हम चिपके रहेंगे मिट्टी से ही। इस दम-घोट घोंसले में ज़्यादा दिन हम नहीं रह सकेंगे।

जवान : तुम दिल्ली के रहने वाले हो, काका ?

काका : हाँ।

जवान : तुम सब अराम से पहुँच गये थे यहाँ पर !

काका : मैं पहुँच गया, पर आराम नसीब हुआ मेरे घर वालों को ! सब-के-सब रास्ते में ही अल्लाह को प्यारे हो गये।

जवान : (हमदर्दी के साथ) क्यों ? खाने-पीने-पहनने का कोई इंतज़ाम नहीं था या उसमें कुछ कोताही थी ?

काका : (मायूसी भरी हँसी के साथ) न, न, रहम-दिल सुलतान ने अपनी तरफ़ से कोई कोताही नहीं की थी। काफ़ी अच्छा इन्तज़ाम था। मगर हम बदनसीब मिट्टी के पुतले हैं न ! मेरे बूढ़े बाबा, जिन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी दिल्ली में गुज़ारी थी, दिल्ली-दिल्ली कहते हुए दिल्ली से कुछ ही फ़ासले पर वफ़ात पा गये। बेटा इस्माइल, छः बरस का था, ज़िन्दा होता तो अब दस-बरस का होता...आँखों के आगे राह की उड़ती हुई मिट्टी, हवा के ज़र्रे-ज़र्रे में बिखरी हुई और पर्दे की तरह छाई हुई मिट्टी, रेशमी कफ़न की मानिंद सर पर लहराती हुई मिट्टी, हर तरफ़ से उठने वाली मिट्टी...इस घेरे में मेरा बेटा भी मिट्टी हो गया। फिर बेटे की जुदाई ने उसकी माँ को भी...।

चुप हो जाता है।

जवान : (बात बदलते हुए) ख़ैर जाने दो काका, मुझे इस क़िले के मुताल्लिक़ बताओ ! मैंने सुना है कि क़िले के नीचे एक अजीबो-ग़रीब तहख़ाना है जहाँ हमेशा अँधेरा रहता है ! और कहते हैं कि तहखाने के दरवाज़े जाने कहाँ-कहाँ काले-कोसों खुलते हैं।

काका : तहख़ाना क्या है, एक अजूबा है...बहुत लम्बा-चौड़ा जो खोखले अजगर की तरह कुंडली मारे क़िले के पेट में बैठा है। (कड़वाहट के साथ) अगर यह अजगर क़िले का पेट चीरकर बाहर आता और तमाम मखलूक़ को निगल लेता, सबको आराम मिल जाता।

बाहर शोर-गुल।

जवान : (भाला सँभाल कर) कौन है ?

मुहम्मद : (भीतर से ही) हम मुहम्मद।

जवान : मुहम्मद ? कौन-सा मुहम्मद ?

काका : खामोश हो बेवकूफ़, सुलतान आ रहे हैं !

मुहम्मद उनींदी हालत में आता है।

दोनों : खुदा सुलतान को सलामत रखे।

मुहम्मद लम्हे भर बेदम-सा खड़ा रहता है, फिर।

मुहम्मद : (बूढ़े पहरेदार से) शरीफ़ बरनी को यहाँ आने के लिए कहो।

काका बंदगी करता हुआ जाता है।

जवान : गुस्ताख़ी माफ़ हो ख़ुदावंद, अनजाने में भूल हो गई।

मुहम्मद : कोई बात नहीं, वो तुम्हारा फ़र्ज़ था।

दीवार के किनारे तक जाता है।

जवान : गुस्ताखी माफ़ करें सुलतान ! अर्ज़ करता हूँ कि क़िले के किनारे पर उतनी दूर न जाएँ।

मुहम्मद : (हँसकर) तुम यहाँ के लिए नये हो ?

जवान : हाँ, हुज़ूर। अब तक फ़ौज में था। कल रात यहाँ आया। बन्दे से कुछ ग़लती हुई तो माफ़ करें, हुज़ूर !

मुहम्मद : बात-बात पर माफ़ी मत माँगो। और दो महीने यहाँ रहोगे तो तुम्हें भी सबके सामने लार टपकाने की आदत हो जाएगी। कम-से-कम तब तक बेबाक बने रहो ! तुम्हारी उम्र क्या होगी ?

जवान : उन्नीस का हूँ, हुज़ूर।

मुहम्मद : उमंगों—भरी उम्र है, पूरे आलम को फ़तह करने के ख्वाब देखने की उम्र है। मैं भी जब पहली मरतबा दौलताबाद आया था, तब इक्कीस बरस का था, इस क़िले की तामीर में लगा था। एक रात मैं अकेला इसी जगह पुराने क़िले के बुर्ज़ पर खड़ा था। क़रीब ही मशालची के हाथ में मशाल अपने सुनहले पंखों को फड़फड़ा रहा था। क़िले का एक आधा बना हुआ गुम्बद आसमान को अपने सीने में समो लेने की कोशिश कर रहा था। उसी वक़्त यकायक कुछ हो गया...गोया किसी ने जादू कर दिया। मैं, मशाल, आसमान, क़िला सब पिघल गये...एक हो गये। बाहर की तारीकी मेरी रगों में रच गई थी। चमकते तारों की टिमटिमाहट मेरी नब्ज़ में धड़क रही थी। लम्हे का दायरा टूट गया था। तमाम सवाल-जवाब ख़ामोश थे। मैं मिट्टी बना हुआ था, सब्ज़ा बना हुआ था, धुआँ था, आसमाँ था। उसी वक़्त दूर से किसी पहरेदार ने आवाज़ दी, 'होशियार! मैं होश में आ गया...अध-जला मशाल, अध-बना गुम्बद, सब जुदा हो गये।

सिपाही, यह मत सोचो कि तुम्हारी नौजवानी से मैं रश्क करता हूँ। जूझने के लिए अभी बहुत ज़िंदगी पड़ी है तुम्हारे पास। मुझे देखो, मुद्दत बाद फिर यहाँ आया हूँ। उसी खोई हुई रात की तलाश में निकला हूँ। मुझे दौलताबाद आए चार साल हो गये। इसी अरसे में यहाँ आकर मैंने क्या देखा...क्या पाया...? क़िले के बाहर भूत-सा खड़ा हुआ यह बीहड़ जंगल! क्या सुना? जंगली सियारों की हूल! शहर के कुत्तों का शोर! बीस साल और गुज़र जाएँ, तो उस वक़्त तुम मेरे बराबर के हो जाओगे, और मैं तब इस जंगल के नीचे दफ़्न रहूँगा। उस वक़्त... (जवान चुप है) क्या तुम मुझे याद करोगे? ख़ामोश क्यों हो?

जवान : (डरते हुए) ख़ुदावंद, मुझे माफ़ करें। मैं बिलकुल नहीं समझा!

मुहम्मद : (चीखकर) नहीं समझा! नहीं समझा! तो ज़िंदा क्यों हो! क्यों बेकार साँस लेते हो? क्यों हवा को ना-पाक

करते हो ? (फिर एकदम धीमा पड़कर) ख़ैर, जाने दो ! तुम्हारा क्या क़सूर है ? आखिर तुम भी तो उन्हीं में से एक हो ! जाओ, मेरी बातें भूल जाओ।

सन्नाटा ! दो-तीन लम्हों के बाद बरनी आता है।

बरनी : अल्लाह-ताला खुदावंद सुलतान को सलामत रखे।

सुलतान इशारे से पहरेदारों को हटा देता है।

: सुलतान ने मुझे याद फ़रमाया ?

मुहम्मद : शाही महल की गुमसुम दीवारें नाक़ाबिले-बरदाश्त हो गईं तो मैं यहाँ भाग आया। यहाँ आने पर मैंने महसूस किया कि कोई यहाँ मौजूद हो, ताकि मैं उससे मुसलसल गुफ़्तगू कर सकूँ। इसलिए तुम्हें बुला भेजा। सो गये थे ?

बरनी : मैं अबू हनीफ़ा की किताब पढ़ रहा था।

मुहम्मद : खुशनसीब हो। नींद न आए तो किताबें पढ़ सकते हो। लेकिन मैं...इसरार करता हूँ कि नींद आये...पर नहीं आती। पढ़ने-पढ़ाने का इश्तियाक़ भी अब न रहा। रूमी के दीवान के पीछे मैं दीवाना रहता था, दिन-रात जब जी में आया पढ़ने बैठ जाता था। मगर अदब में अब वो सारी दिलचस्पी ही ख़त्म हो गई। शेरो-शायरी अब महज़ लफ़्फ़ाज़ी लगती है। अब पिछले के उन दिनों को याद करता हूँ तो यक़ीन नहीं होता, जबकि मैं अल्लाह से इल्तिजा किया करता था कि या अल्लाह, मुझे नींद से बचा ले।

बरनी : आप शाही हकीम से मशविरा क्यों नहीं करते हुज़ूर ?

मुहम्मद : इसमें हकीम क्या करेंगे बरनी ! तुम वाक़या-नवीस अगर कुछ इलाज कर सको तो, तुम्हारा एहसान मानूंगा। तुम्हें मालूम है कि बंगाल में फ़ख़रुद्दीन ने बग़ावत खड़ी की है ? आज ही ख़बर मिली है।

बरनी : (अचरज से) आप क्या फ़रमा रहे हैं, हुज़ूर !

मुहम्मद : दक्खिन में फिर बाग़ी ताक़तों ने सिर उठाया है। मालाबार में एहसानशाह ने ख़ुद को सुलतान ऐलान किया है। दूसरी तरफ़ बहाउद्दीन गुरशास्प भी मेरे ख़िलाफ़ फ़ौज इकट्ठी कर रहा है। दो-आब का क़हत अब हर सूबे में फैलता जा रहा है। सारा मुल्क ही बद-हाली की लपटों में

झुसला जा रहा है। तमाम कारगर काम-धंधे चौपट हो गए हैं। सिर्फ़ एक धन्धा आज तरक़्क़ी पर है...वह है राइज सिक्कों की जगह जाली सिक्कों को जारी करना। गोया सलतनत का हर घर जाली कारखाना हो। आस-पास अगर मैं किसी को भरोसे के लायक़ पाता हूँ तो सिर्फ़ दो शख्स नज़र आते हैं अपनी वसी सलतनत में... सिर्फ़ दो, एक शहाबुद्दीन के वालिद और दूसरा आईन-उल्-मुल्क! बाक़ी सब इसी इन्तज़ार में हैं कि कब मेरी आँखें बन्द हो जाएँ! अब इन सबसे मैं कैसे निबटूँ? क्या करूँ! तमाम मुल्क महज़ बलाओं का घर बना हुआ है। एक बीमारी को रफ़ा करता हूँ तो दूसरी आ घेरती है!

बरनी : ख़फ़ा न हों ख़ुदावंद, आपने दरियाफ़्त किया है, इसलिए चंद बातें अर्ज़ करना चाहता हूँ। आप आलिम-फ़ाज़िल हैं। आपकी बलंद-ख़याली, ख़ुश-बयानी सब सियासत के बियाबाँ में ज़ाया हो रही हैं। आप को तो आलिमों के बीच होना चाहिए था। मेरी राय में आप सलतनत की बाग-डोर फ़िरोज़शाह के हवाले कर दें और हुकूमत के जंजाल से निकल जाएँ।

मुहम्मद : अगर तदबीर इतनी सहल होती तो अब तक क़िस्मत-आज़माई कर लेता। मैंने ख़ुद कई मरतबा अपने-आपसे यह सवाल किया था कि तवारीख़ किस की है? क्या मेरी हो सकती है? और क्या उस तवारीख में मेरी हस्ती कभी क़ायम हो सकती है जहाँ हर लम्हा शिद्दत के साथ वहशी टकराहट हुआ करती है? ऐसे फानी का कहाँ तक एतबार किया जाए? आख़िर इस बवाले-जाँ से कब निजात हासिल होगी? अन्दर-ही-अन्दर एक ख्वाहिश उभरती है कि इस कशमकश को तोड़कर हज पर रवाना हो जाऊँ। 'रुआब' के सामने अपनी ज़िंदगी बिछा दूँ और रूहानी सुकून हासिल कर लूँ। मगर हक़ीक़ते-हाल निहायत संगीन है, बरनी! ला-इलाज बीमार शख्स को मैदान में खुले फेंक देने का मतलब है, नई बीमारियों को दावत देना। (आवाज़ को ऊँचा करते हुए) बरनी, हज़ारों खूँख्वार गिद्ध सर पर मंडरा रहे हैं जिनकी ख़ूनी नज़रें मुझ पर जमी हुई हैं। मैं अपनी बदनसीब रिआया को

किसके भरोसे छोड़ दूँ! मैं अपनी रिआया से जुदा नहीं हूँ। वरनी, ऐसी सूरत में तख़्त छोड़ने का मतलब ख़ुद-कुशी करना है। अगर इन ख़ूँरेज़ गिद्धों का ये अटूट ताँता मेरे इतने क़रीब न मँडराता मैं ज़रूर कोई-न-कोई तदबीर निकालता। घुटने-कोहनी के बल रेंगता हुआ चला जाता। मगर अब मैं क्या करूँ? ख़ौफ़ के मारे नींद की पलकें जवाब दे रही हैं। न जाने मेरी रगे-ख़ून कब फट जाएगी। (चीख़ कर) बरनी, दोज़ख़ की ये पोशीदा ताक़तें मुझसे इस क़दर क्यों इन्तक़ाम लेना चाहती हैं? क्यों ये ख़ौफ़नाक शक्लें मेरे इर्द-गिर्द मँडराती रहती हैं?

बरनी : (ख़ौफ़-ज़दा होकर) मालिक!

मुहम्मद : जानते हो, मेरी रिआया ने मुझे कौन-सा प्यारा नाम अता किया है! सनकी सुलतान! सनकी सुलतान!! (फिर एकाएक आजिज़ी के साथ) बरनी, मैं किस तरह समझदार बनूँ?

बरनी : ख़ुदावंद, वो भी दिन थे, जब आपके पास मुहब्बत और ज़िंदगी के बलंद ख़्याल थे, सुकून की शदीद तड़प थी। लेकिन अब?...सिवाय क़त्ले-आम के कुछ सोचते ही नहीं, जो आपका रोज़मर्रा का काम हो गया है। ज़रा-ज़रा-सी बात पर सख़्त सजा सुनाते हैं! ज़रा-ज़रा-सी भूल के लिए सूली पर चढ़वा देते हैं, हूज़ुर! ये बे-रहमी अब बन्द कर दें, अपनी रूह के सुकून के वास्ते! जो-जो आपकी सलतनत छोड़कर चले गये हैं, जो जिला-वतन कर दिए गये हैं, उन सबको माफ़ी बख़्श दें, उन्हें वापस बुला लें। तब यक़ीनन मुल्क-भर में अमन-चैन और मज़बूती पहले की तरह क़ायम हो जाएगी।

मुहम्मद : (बड़ी तशवीश के साथ) लेकिन उससे पहले मुझे ये यक़ीनी तौर पर इल्म होना चाहिए कि मेरा मक़सद ही ग़लत था। मेरे इरादे ही नाक़िस थे। तब शायद तुम्हारा यह इलाज मुफ़ीद साबित हो। लेकिन जब तक वो लम्हा नहीं आएगा, तब तक इसी पर अमल करूँगा। मैंने जो सीखा है या जाना है, उसी को जारी रखूँगा, उसी से रिआया को रूशनास कराता रहूँगा। मैं यह कभी गवारा नहीं करूँगा कि तवारीख़ को फिर अन्धों की तरह अपने-

आपको दुहराने का मौक़ा मिले। ये मजबूरी है कि अपने पास मौजूदा एक ही ज़िंदगी पड़ी है, इसलिए मैं इसे नाकाम नहीं होने दूंगा। (एक-एक हर्फ़ पर जोर देकर) लोग जब तक मेरी बातों पर ग़ौर नहीं करेंगे, तब तक यह क़त्ले-आम मुसलसल जारी रहेगा। दूसरा कोई चारा नहीं है बरनी।

बूढ़ा पहरेदार दौड़ा हुआ आता है।

बूढ़ा : सुलतान सलामत रहें। गज़ब हो गया हुज़ूर ! वज़ीर साहब ने पैग़ाम भेजा है...।

मुहम्मद : क्या ?

बूढ़ा : वज़ीरे-आज़म नजीब का खून हुआ है। अभी-अभी उनकी लाश उनकी आराम-गाह में बरामद हुई है।

मुहम्मद बेदम-सा खड़ा हो जाता है।

दृश्य : 9

पहाड़ी गुफ़ा। आज़म और अज़ीज़ लेटे हुए हैं।

आज़म : (जम्हाई लेते हुए) बेहद गर्मी है। मुझे नींद आती है... मगर नींद से ज़्यादा ज़िंदगी से बेज़ार हूँ ! लानत है ऐसी ज़िंदगी पर...!

अज़ीज़ : तो जाओ, ख़ुद-कुशी कर लो !

आज़म : एक बार कोशिश की थी, पर नाकाम रहा...। अब दुबारा कामयाब हो जाऊँगा, ऐसी उम्मीद नहीं है।

अज़ीज़ चुप रह जाता है कि कहीं आज़म अपना क़िस्सा शुरू न कर दे, मगर आज़म हार नहीं मानता।

: तब मैं क़रीब चौदह बरस का था ! ख़्याल आया कि अपना ख़ात्मा कर लूँ। आधी रात में कुएँ के पास गया, किनारे पर खड़ा हुआ, फिर आँखें बन्द की, कान भी...कूद पड़ा कुएँ में। तभी याद आया कि मैं गर्दन से पत्थर बाँधना भूल गया था। लेकिन अब जब कि कूद चुका था, क्या करता ? गिरा तो था, पर डूबा नहीं। इस पर, कम्बख़्त तैरना अलग जानता था। बचपन की तबियत थी। पानी के लगते ही, बेतहाशा जोश आ गया। दो घंटे ख़ूब तैराकी की, फिर ऊपर चढ़ा, और घर आकर सो गया। उसके बाद फिर कभी कुएँ का रुख़ नहीं किया।

अज़ीज़ : तुम जैसे अनाड़ी से और क्या उम्मीद की जा सकती है।

कोई भी काम सफ़ाई से करना जानते हो ?

आज़म : क्यों, चोरी-उठाईगिरी में कमाल की सफ़ाई दिखा सकता हूँ। कभी चूक नहीं हुई थी। मगर अज़ीज़, ये मुझे अभी तक पता नहीं कि मैं चोर क्यों हुआ। वरना मैं भी आम इन्सान की तरह घर बसाता, मज़े करता, मगर चोरी-चकारी...।

अज़ीज़ : मैं कहता हूँ, तुम बेवक़ूफ़े-आज़म हो। ज़िंदगी में कम-से-कम एक बार इन्सान को ग़लती करनी ही चाहिए, लाज़मी तौर पर। तभी उसकी ख़ूबियाँ रोशन होती हैं।

आज़म : क्या बेतुकी बक रहे हो ?

अज़ीज़ : ज़रा ग़ौर से सुनो। शरीफ़ आदमी को लोग जल्दी भूल जाते हैं। अगर तुमने शराफ़त को धता बता दी, और एक बार चोरी कर ली तो फ़ौरन लोग कहने लगते हैं, 'हाय बेचारा, कितना शरीफ़ लड़का था। अब बिगड़ गया।' उसके बाद एक खून भी करो तो लोग कहेंगे, 'इससे तो पहले ही अच्छा था, बेचारा सिर्फ़ चोरी ही करता था पर अब देखो जानो-माल पर...। अब तुम पराई औरत की इज़्ज़त पर हाथ लगाओ तो लोग आह भर-भरकर कहने लगेंगे, 'हाय, हाय ! वली-क़िस्म का शख़्स था... अब शैतान...।'

आज़म : तुम्हारा मतलब क्या है ? चोरी की, ख़ून भी किया तो अब क्या किसी औरत की इज़्ज़त पर नज़र लगी है ?

अज़ीज़ : ज़रूर है, मगर सीढ़ी-दर-सीढ़ी...काम बनेगा...। इसका भी एक फ़लसफ़ा बनाना होगा। बग़ैर तरजुबा के आती-जाती औरत के साथ बद-सलूकी करो तो कुछ हाथ नहीं लगेगा ! सबसे पहल इक़्तदार हासिल करना है, सुलतान बनना है। तब ज़्यादती, सितम, मौज-मज़ा, ऐशो-आराम... सब लफ़्ज़ों के ख़ास मानी निकलने लगते हैं !

आज़म : मगर तुम सुलतान बनने से रहे। ऐसे हवाई क़िले...।

अज़ीज़ : उसकी फ़िक्र मत करो, एक नुजूमी ने मुझसे कहा था...।

आज़म : (एकाएक उछल कर) अज़ीज़, न, न, इन नुजूमियों के जाल में कभी न आना। इनकी बदौलत हमारे काका ने अपनी ज़िंदगी तबाह कर डाली।

अज़ीज़ : फिर छेड़ दिया अपने कुनबे का क़िस्सा !

आज़म : क़िस्सा नहीं दोस्त, हक़ीक़त बयान कर रहा हूँ। एक मरतबा मेरे काका ने किसी एक नुजूमी को अपना हाथ दिखाया। नुजूमी ने ऐसी ऊँची-ऊँची बातें कीं कि काका अपने को बादशाह समझ बैठे! और आठ रोज़ के बाद अपनी बीवी को भी नुजूमी के पास ले गये, हाथ दिखाने के लिए, कि बीवी की क़िस्मत में भी बेगम बनने की गुंजाइश है या नहीं। अब बेचारा नुजूमी अपनी इल्म की इस तरह क़द्र होते देखकर बोला...'काकी बड़ी औलाद वाली होंगी, उसके नौ बच्चे होंगे।' मगर हमारे काका इस पर इस क़दर बरहम हो गए कि अपनी बीवी और उस नुजूमी का एक ही चुटकी में ख़ात्मा कर डाला।

अज़ीज़ : क्यों, तुम्हारे काका के सिर पर कुछ आ गया था?

आज़म : भूल उस नुजूमी की थी। अगर ऐसा भुलक्कड़ था तो नुजूम का पेशा क्यों अख़्तियार किया था! क्योंकि पिछली मरतबा काका के हाथ देखकर नुजूमी ने फ़रमाया था कि उनके कुल पाँच बच्चे ही होंगे।

फिर ठहाका लगाता है।

अज़ीज़ : ठीक है, अब जितना चाहो ठहाका मारो। अभी अपने करीमख़ान को आने दो। तब तुम्हें पता लगेगा कि मैं सुलतान बनूँगा या डाकू ही रहूँगा।

आज़म : (संजीदगी के साथ) मगर अज़ीज़, ताक़त की और क्यों हविस रखते हो? अब जैसी हालत है, तुम काफ़ी साहिबे-इक़बाल हो! मुल्क के सुलतान न सही, डाकुओं के बादशाह तो हो। मुसाफ़िर-राहगीरों को लूट-लूटकर काफ़ी दौलत बटोर ली है। और भी बटोरी जा सकती है, फिर भी क्यों लालच करते हो?

अज़ीज़ : मगर लोगों को धोखे से लूटने में मजा नहीं है, आज़म! लूट के माने लूट ही रहते हैं। उसमें ख़ास माने तब आते हैं जब सबके सामने खुल्लम-खुल्ला लूट-खसोट करो और लोग कहें कि ये हुकूमत है। तुम शतरंज का खेल जानते हो?

आज़म सिर हिलाकर नहीं करता है।

: शतरंज में एक प्यादा होता है, सबसे कमज़ोर, हमेशा टेढ़ी चाल चलता है। उसकी न कोई सिफ़त है, न रुतबा।

फिर भी कहीं मार खाये बिना सात क़तारों को पार कर आठवीं में अगर क़दम रख दे तो घुड़सवार से लेकर वज़ीर तक कुछ भी बन सकता है। यानी सीधे बादशाह की नाक के नीचे पहुँच सकता है। अब मैं भी उस प्यादे का रास्ता क्यों न अख्तियार कर लूं ?

आज़म : यानी तुम्हारे मनसूबे सुलतान बनने के हैं ! तब मेरी क्या हैसियत होगी ?

अज़ीज़ : मेरे दरबार के अमीर बन जाना !

आज़म : नहीं दोस्त ! लगता है, कि चोर से ऊँचा रुतबा मुझे हज़्म ही नहीं होगा।

अज़ीज़ : तुम्हारे मनसूबों में ही कंगाली है तो...। (बाहर से क़दमों की आहट सुनाई पड़ती है) लो, करीमख़ान आ गया।

करीमख़ान एक आदमी को बांधे लाता है, जिसके हाथ बँधे हैं, मुँह और जिस्म ऊपर से ढके हुए हैं। साथ ही एक बड़ी गठरी भी लाया है।

: बड़ी देर कर दी, करीमख़ान ? मैंने जो हिदायत दी थी... तो यही शख्स है ?

करीम : हाँ हुज़ूर !

अज़ीज़ : ठीक है। (पैसे का थैला थमा देता है) फिर जब ज़रूरत होगी बुलवा लूँगा, अब जाओ।

करीमख़ान चला जाता है।

आज़म : यह कौन-सा जानवर है ?

अज़ीज़ : बताता हूँ, पहले खोलो उसे।

आज़म खोल देता है। अज़ीज़ क़ैदी का मुँह घूर कर देखता है।

: लाहौल ! अहमक़ करीमख़ान किसी और को ले आया है !

आदमी : हाँ, हमने तुम्हारे उस आदमी को साफ़-साफ़ बताया था कि हम कौन हैं। फिर भी उसने बद-तमीज़ी की। सुलतान को ये बात मालूम हो, तब देखना...तुम सबकी चमड़ी न उधेड़ दी जाए तो मेरा नाम नहीं।

दोनों : सुलतान !

अज़ीज़ : हमें माफ़ करें हुज़ूर। मैंने तो और किसी मालदार को पकड़ लाने की हिदायत दी थी। ग़लती से करीमख़ान

आपको पकड़ लायां। माफ़ करें हुज़ूर! लेकिन गुस्ताख़ी न मानें...आपकी तारीफ़?

आदमी : (बड़े रोब से) हम ग़ियासुद्दीन अब्बासी हैं। ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा हैं, सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक के मेहमान हैं।

आज़म : हमें माफ़ कर दें, हुजूर!

अज़ीज़ : हमसे ग़लती हो गई, हुजूर।

ग़ियासुद्दीन : बेशक ग़लती है। दूर-दराज़ अरबिस्तान से हम रवाना हुए। इतना लम्बा सफ़र किया। मगर इस दरमियान एक भी शख़्स को हमें हाथ लगाने की जुर्रत नहीं हुई। हमारी तारीफ़ और रुतबे से ज्योंही वाकिफ़ होते, फ़ौरन ताज़ीम से झुककर चले जाते! हो सकता है, पहले यक़ीन न भी किया हो, मगर सुलतान का इजाज़त-नामा देखते ही ताज़ीम के साथ हमारा इस्तक़बाल किया। और तुमने इस क़दर हमारी तौहीन की!

अज़ीज़ : ख़फ़ा न हों, जनाबे-आला। ग़लतफ़हमी इसलिए हुई कि शाही मेहमान होते हुए भी आप इस तरह अकेले-अकेले...।

ग़ियासुद्दीन : वो सारी तफ़सीलें तुझे क्यों दें, बेवक़ूफ़? हम अकेले हैं तो क्या हुआ! सिर्फ़ सुलतान को ख़बर करने की देर है। ज्यों ही उनको हमारी आमद की इत्तिला मिलेगी फ़ौरन उनके नुमाइंदे दौलताबाद के क़रीब पहुँच जाएँगे, और हमारा इस्तक़बाल करने के वास्ते बा-अदब तैयार रहेंगे!

अज़ीज़ : तो फिर आपकी इजाज़त हो तो हम भी आपके साथ चलें और बा-हिफाज़त आपको दौलताबाद पहुँचा दें। इससे कम-से-कम इतनी तो तसल्ली होगी कि हमने अपनी ग़लतियों की इस्लाह कर ली।

ग़ियासुद्दीन : (हिक़ारत से) चोर होने के बावजूद लगता है कुछ हद तक शराफ़त से भी वाक़िफ़ हो। ठीक है। हमें भी सही रास्ता मालूम नहीं है। इसके अलावा ये हिन्दुस्तानी ग़ैर-मुल्क-वालों को बड़ी हिक़ारत से देखते हैं।

अज़ीज़ : यानी आप पहली बार यहाँ तशरीफ़ ला रहे हैं? सुलतान से पहले मुलाक़ात नहीं हुई?

ग़ियासुद्दीन : (बड़े रोब से) नहीं, पर इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? ये इजाज़त-नामा और अँगूठी तो है, जो सिर्फ़ ख़लीफ़ा

ख़ानदान के नुमाइंदे पहनते हैं। और किस चीज़ की ज़रूरत है ?

अज़ीज़ : यानी आपका मतलब है कि बिना इजाज़त-नामा और अँगूठी के कोई यहाँ आपको पहचान नहीं सकता ?

ग़ियासुद्दीन : हाँ, नामुमकिन ही समझो। (फिर एकाएक शक की निगाह से) लेकिन तुम ये सब क्यों पूछ रहे हो ?

अज़ीज़ : (उछलकर) आज़म, एकदम फँस गया। मुझे ख़बर मिली थी कि जनाबे-आला यहाँ मौजूद हैं। इसी वास्ते करीम-ख़ान को भिजवाया था।

ग़ियासुद्दीन : क्या बक रहे हो ? क्या मतलब है इसका ?

अज़ीज़ : सिर्फ़ चन्द लम्हे, और उसके बाद हर मतलब बे-मतलब साबित होगा !

आज़म : अज़ीज़, इनका क़त्ल मत करो। न, न, न, मेरी बात मानो...।

ग़ियासुद्दीन : (ख़ौफ़-ज़दा होकर) क्या ? मेरा क़त्ल करोगे ? क्यों करोगे ? मेरे क़त्ल से क्या हासिल होगा ? सुनो, मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। जो भी होगी, तब होगी, जब सुलतान अता करेंगे। ये बात सही है कि मैं ख़लीफ़ा ख़ान-दान का नुमाइंदा हूँ, ख़लीफ़ा का पड़पोता हूँ, मगर फ़िलहाल मैं खाली हाथ हूँ। मुफ़लिस हूँ। मुझ-जैसे के क़त्ल से तुम्हें क्या मिलेगा ?

अज़ीज़ ख़ामोश है, जिससे ग़ियासुद्दीन और घबरा जाता है।

: सच कहता हूँ, मेरी मुफ़लिसी ही मुझे यहाँ ले आयी। एक कौड़ी भी पास होती तो आज मैं यहाँ मौजूद न होता रास्ते भर में न जाने कितने बटमारों-लुटेरों से साबिक़ा पड़ा। लेकिन मुझे ख़ाली जेब पाकर सबने मुझे छोड़ दिया। अब आपको ही मुझसे क्या मिलेगा ?

अज़ीज़ : बहुत मिलेगा। तुम नहीं रहोगे तो तुम्हारी जगह मैं दौलताबाद जा सकूँगा।

आज़म : अज़ीज़, मेरी बात मानो। सुनो...।

अज़ीज़ : चुप रहो। क्यों फ़िज़ूल गला सुखाते हो ? ज़रा समझ से काम लो। ऐसा मौक़ा फिर कब मिलेगा ? हाँ, ये हैं ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदे । न मालूम ऐसे कितने

नुमाइंदे अरबिस्तान में पड़े हों, उन्हीं में से एक ये दरवेश पड़पोता भी होगा। दौलताबाद में कोई इससे वाक़िफ़ नहीं। अगर होंगे भी तो अब उन्हें याद नहीं होगा। फिर फ़ुरसत ही किसे है कि वाक़फ़ियत साबित करते फिरें, जब कि दौलताबादी ख़ुद भुखमरी से तबाह हो रहे हैं। सारी ज़िम्मेदारी मुझ पर छोड़ दो। और तुम ताब नहीं ला सकते तो चुपचाप बाहर चले जाओ।

आज़म चला जाता है।

ग़ियासुद्दीन : या अल्लाह! नहीं! मेरा क़त्ल मत करो। ख़ुदा के वास्ते मुझे छोड़ दो। चाहो तो ये तुम्हीं ले लो...ये अँगूठी, ये इजाज़त-नामा! इन्हें जो चाहो करो। मुझे जाने दो। मैं यहाँ से सीधे अरबिस्तान वापस चला जाता हूँ। आइंदा कभी हिन्दुस्तान का रुख़ भी नहीं करूँगा। तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। मुझे छोड़ दो, मेरा क़त्ल मत करो।

अज़ीज़ के पाँव मज़बूती से थाम लेता है।

अज़ीज़ : (अपलक) नहीं, नहीं, नहीं!

ग़ियासुद्दीन : (अधमरा-सा, गोया अपने आपसे बड़बड़ा रहा हो) नहीं, नहीं, नहीं; हाँ, मैं जानता था कि मेरा नसीब कभी बेदार नहीं होगा! मुझे एहसास था कि मेरी ज़िंदगी में कभी बरकत नहीं होगी। जब से पैदा हुआ, तभी से मुफ़लिसी का साथ रहा। दर-दर ख़ाक छानता रहा। उसी दौरान न जाने कहाँ से यह कंबख़्त ख़त आ टपका। मैंने समझा, मुझ पर ग़ैबी ताक़तों की इनायत हुई है, ज़रा-सी उम्मीद बँधी कि अब हम ख़स्ता-हाल नहीं रहेंगे। आइन्दा शायद हम भी ऐश कर सकेंगे। और हम बद-बख़्त चले हिन्दुस्तान की तरफ़। उसी वक़्त मेरे ज़मीर ने मुझे चिताया कि अबे अहमक़, तेरी ज़िंदगी में कभी करिश्मे नहीं होंगे। नहीं, नहीं, नहीं!

अज़ीज़ ग़ियासुद्दीन की बातों में खो जाता है। एकाएक ग़ियासुद्दीन अज़ीज़ को धक्का देकर नीचे गिरा देता है, और बाहर भाग जाता है।

अज़ीज़ : (गिरे-गिरे) आज़म, पकड़ो बदमाश को। बाँध दो उसे।

तेज़ी से उठकर बाहर चला जाता है, और थोड़ी देर तक मुठभेड़ की आवाज़ें आती हैं।

अज़ीज़ : (आवाज़) शाबाश ! कस लो गिरफ़्त में।

ग़ियासुद्दीन : (आवाज़) या ख़ुदा, मुझे अपनी हिफ़ाज़त में ले।

भीतर से तलवार मारने की आवाज़। ग़ियासुद्दीन की चीख। आज़म भागता हुआ स्टेज पर आता है, कपड़ों पर ख़ून के धब्बे। सारा जिस्म काँप रहा है, चेहरा पसीने-पसीने है। उसी के पीछे अज़ीज़ भी ख़ून से रंगी तलवार लिए आता है, सर पर ग़ियासुद्दीन का इमामा है। जिस्म ख़ून से रंगा है।

अज़ीज़ : (ठहाका मारते हुए) क्यों दोस्त ! सुवक रहे हो ?

आज़म : (चिढ़कर) मत बोलो मुझसे ! या अल्लाह ! मैंने उन्हें क्यों रोका ? क्यों पकड़ा ?

अज़ीज़ वहीं पड़ी ग़ियासुदीन की गठरी को खोलता है।

अज़ीज़ : तुम भी एक क़िस्म के अजूबे हो। न जाने कितने मुर्दे तुम्हारे हाथों से गुज़र चुके होंगे ! तुमने ख़ुद कितने ही मुर्दों में घास-फूस भरी है, और उन्हें कहाँ-कहाँ लादे फिरे हो। अब एक मामूली शख्स की मौत को बर्दाश्त नहीं कर सके।

गठरी से चोग़ा निकालता है, फिर ख़ुद पहन लेता है।

: इधर देखो आज़म, कैसा लगता हूँ, ख़लीफ़ा का पड़पोता !

आज़म मुँह नहीं फेरता, अज़ीज़ उसकी पीठ पर एक घूँसा मारकर।

: अबे हँस, बेवकूफ़ हँस, ठहाका मार। च्च च्च ! रोता है। अबे, सामने देख आज़म, शाही महल का बंद दरवाज़ा खुल गया। अब नाचो, नाचो (गाने लगता है) !

बड़े ख़लीफ़ा का पड़पोता...

बड़े ख़लीफ़ा का पड़पोता...

आज़म बड़ी नाराजगी से देखता है, मगर अज़ीज़ को नाचते और गाते देखकर, आज़म के चेहरे पर धीरे-धीरे हँसी खुलती है।

दृश्य : 10

शाही महल में मुहम्मद की आरामगाह। मुहम्मद खिड़की से बाहर देख रहा है। सौतेली मां का प्रवेश।

सौतेली माँ : मुहम्मद, देखो, बाहर क्या हँगामा हो रहा है !

मुहम्मद : (सर्द आवाज़ में) हुं।

सौतेली माँ : इस सबका क्या मतलब है मुहम्मद ?

मुहम्मद : और किया ही क्या जाए, अम्मीजान ! मैंने ख़ुद ऐलान किया था कि तांबे के सिक्के की क़ीमत चाँदी के सिक्के के ही बराबर है। अब अपने हुक्म की तामील मुझे तो करनी ही होगी।

सौतेली माँ : हद दर्जे की नादानी है। वज़ीरे-नायब फ़रमाते हैं कि बाहर खड़ी पाँच सौ गाड़ियों में से तीन-चौथाई तो जाली सिक्कों की हैं। अगर इन्हें यों ही वापस लोगे तो शाही ख़ज़ाने का क्या होगा ?

मुहम्मद : मैं लाचार हूँ अम्मी जान ! जाली सिक्कों के मुताल्लिक़ मुझे तभी क़ियास कर लेना चाहिए था जब मैंने तांबे के सिक्के जारी किए थे। मगर तब मैंने अंजाम नहीं सोचा, जो मेरी बहुत बड़ी भूल थी। अब एक तरफ़ क़हत की मार, दूसरी तरफ़ जाली सिक्कों का ज़ोर, और नतीजा यह है कि पूरे मुल्क की तिजारत की हालत चौपट हो गई है। अम्मी, जो हो, अब इन सिक्कों को वापस लेना ही होगा।

सौतेली माँ : दस-बीस नहीं, पाँच सौ गाड़ियाँ ! अगर पहले रोज़ का यह हाल है, तो आइन्दा क्या होगा ? इसका भी अंदाज़ा लगाया है। रिआया की बेईमानी की ख़ातिर तुम्हारा ख़ज़ाना ख़ाली हो जाए, यह कहाँ का इंसाफ़ है ?

मुहम्मद : (बेज़ारी से) मैंने कितनी बार कहा है कि ख़ज़ाने में जमा रक़म मेरी नहीं, रिआया की है।

सौतेली माँ : लेकिन खज़ाने में जाली सिक्के भरने से रिआया को तो कुछ फ़ायदा नहीं होगा।

मुहम्मद : वो ख़ज़ाने में नहीं जाएँगे, अम्मी। मैंने दूसरा इंतज़ाम सोच लिया है। उन तमाम ढेर-के-ढेर सिक्कों को अपनी आराम-गाह के पास के बाग़ीचे में रखवा दूंगा, क़तार में, ताकि हर घड़ी मैं उनका दीदार कर सकूँ।

सौतेली माँ : या अल्लाह ! खज़ाने के साथ अब अपने चमन को तबाह करने पर तुले हो ? आख़िर ये पागलपन क्यों कर रहे हो, मुहम्मद ?

मुहम्मद : जब मैंने चमन बनवाया था, तब तसव्वुर किया था कि हमारा चमन शायर सादी के तख़य्युल की तस्वीर होगा। हमारी दिली ख़्वाहिश थी कि हर गुलाब एक हसीन शायरी हो, हर काँटा एक शदीद एहसास हो। लेकिन अब मेरी सलतनत के लिए किसी ख़ास अलामतो-निशान की ज़रूरत नहीं रही अम्मी ! हालात सब कुछ ख़ुद कह रहे हैं। जहाँ हर रोज़ जनाज़े के जुलूस जारी हों, वहाँ दूसरी अलामत की क्या ज़रूरत ?

सौतेली माँ : तो फिर इस जनाज़े के जुलूस को बन्द क्यों नहीं करते ? मैंने इन दिनों तुम्हारे मुताल्लिक़ बेशुमार नाक़ाबिले-एतिबार बातें सुनी हैं। सुना है कि तुम वज़ीरे-आज़म के क़ातिलों की खोज निकालने के बहाने शहर-भर के सरदारों, इमामों, अमीरों के पीछे हाथ धो के पड़े हो, और उनके ख़ानगी मुलाज़िमों को अपना ख़ुफ़िया बना लिया है। घर में कही हुई हर बात तुम्हारे कानों में पहुँचाई जा रही है और सुना है कि इसी वजह से आजकल तमाम अमीर-उमरा-इमाम-सरदार लोगों पर तुम्हारी जासूसी का ख़ौफ़ इस तरह छाया हुआ है कि बेचारे अपने ही घर पर अपने मुंह पर ताला लगाए बैठे रहते हैं। क्या

यह सब सच है ?

मुहम्मद : हाँ मुमकिन है।

सौतेली माँ : क्या ये भी सच है कि तुम्हारे शक्की पंजे से ख़ौफ़ खाकर पाँच सरदार फ़रार हो गए हैं ?

मुहम्मद : सिर्फ़ चार लोग फ़रार हैं अम्मी, पाँचवें ने तो ख़ुदकुशी कर ली।

सौतेली माँ : कौन ? किसने ख़ुदकुशी की ?

मुहम्मद : अमीर जलालुद्दीन ने...।

सौतेली माँ : आखिर क्यों, मुहम्मद ?

मुहम्मद : अमीर जब अपनी बीवी को बता रहा था कि नजीब के क़ातिल को वह जानता है, तो उसी के मुलाज़िम ने मुझे इसकी खबर दी। मैंने उसे पकड़ लाने के लिए सिपाहियों को भेजा ! मगर जैसे ही सिपाहियों को आते हुए देखा, अमीर ने खुदकुशी कर ली।

सौतेली माँ : (खौफ़-ज़दा होकर)अब बाज़ आओ, मुहम्मद। एक वज़ीर की मौत पर इतना तरद्दुद ज़ाहिर करना एक सुलतान को ज़ेब नहीं देता। और इससे तुम्हारे तमाम मोतबिर अमीर-उमरा तुम्हारे खिलाफ़ बग़ावत कर देंगे, बेहद संगीन सूरतें-हाल पैदा हो जाएगी। बाज़ आ जाओ, मुहम्मद !

मुहम्मद : लेकिन नजीब के क़ातिल का नाम छिपाने की खातिर ख़ुदकुशी करने की नौबत क्यों आई ? वो भी अमीर जलालुद्दीन जैसी बड़ी हस्ती को ! आख़िर कौन है ये मख़्सूस क़ातिल ?

सौतेली माँ : मुहम्मद, नजीब की मौत हुई है तो ये ठीक ही हुआ। वो तुम्हारा दीन बिगाड़ना चाहता था।

मुहम्मद : लेकिन नजीब के क़ातिलों को दीन की फ़िक्र क्यों होने लगी ?

सौतेली माँ : चाहे दीन की हो, चाहे अमन की ! लेकिन नजीब-जैसे एक अदना शख़्स का तुमने जो एतिबार किया, अपने उमराओं की जो लापरवाही की, उसी से यह हंगामा हुआ है। तुम्हें पता भी है कि सैयद-इमाम तुम्हारे खिलाफ़ बयान देते हैं, सरदार तुम्हारे खिलाफ़ साज़िश करते हैं, इसलिए कि नजीब इस हंगामे की जड़ था। अब वो मर गया है तो अच्छा ही हुआ।

मुहम्मद : नजीव मेरा वफ़ादार नहीं था, लेकिन तख़्ते-शाही का सच्चा वफ़ादार था। उसकी वफ़ादारी ने निज़ामे-सलतनत के सामने एक मिसाली पैमाना पेश किया था। अगर नजीव किसी रोज़ मेरे ख़िलाफ़ तलवार उठाता तो मैं यक़ीनन तसलीम कर लेता कि मुझसे कोई संगीन भूल हो गई है।

सौतेली माँ : बहरहाल, अब तो उसे भूल जाओ। अगर इस तरह बेतहाशा सबको परेशान किया करोगे तो तुम्हारा तख़्ते-शाही कभी मुस्तक़िल नहीं होगा। अगर तुम्हारे ख़िलाफ़ ये सरदार-उमरा बग़ावत खड़ी कर दें तो तुम क्या करोगे ?

मुहम्मद : जूझता रहूँगा।

सौतेली माँ : मुहम्मद, कब तक अपने आपको यों ज़रर पहुँचाते रहोगे ?

मुहम्मद : इससे कोई छुटकारा नहीं है, अम्मीजान ! ...लेकिन अब शायद, ज़्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़े !

सौतेली माँ : क्या मतलब ?

मुहम्मद : अमीर अलाउद्दीन ने ख़ुदकुशी कर ली। उसका भाई किसी से मुलाक़ात करने के बहाने दिल्ली से ग़ायब है। शायद उसे भी क़ातिल का नाम मालूम हो। इस सिलसिले में मैं जल्द ही ऐलान कराने की सोच रहा हूँ। अगर वो अपनी ख़ैरियत चाहता है तो क़ातिल का नाम हमें बता दे, वरना...।

सौतेली माँ : वरना ?

मुहम्मद : उसके वालदैन और बीवी-बच्चों को, जो अभी दिल्ली में बसे हुए हैं, क़त्ल करा दूँगा !

सौतेली माँ : (काँपती है) मुहम्मद, अंजाम दहशतनाक है। तुम्हारी जान की ख़ैरियत नहीं रहेगी !

मुहम्मद : मुझे अपनी ख़ैरियत की परवाह नहीं है।

सौतेली माँ : या अल्लाह ! मुझे ख़ौफ़ लग रहा है। मुहम्मद, मुझ पर दहशत छा रही है ! ये तलाश बंद करो मुहम्मद, मुझ पर मेहरबानी करो ! बंद करो। (ख़ामोश) इस हौलनाक पागलपन से बाज़ नहीं आओगे ? (मुहम्मद अब भी ख़ामोश है; फिर ज़रा रुककर) तो सुनो, मैंने ही नजीब का क़त्ल करवाया था।

सन्नाटा।

मुहम्मद : (काँपती हुई आवाज़ में) जानती भी हो तुम क्या कह रही हो? नहीं अम्मी, मज़ाक़ का ये वक़्त नहीं! अमीर-सरदारों की बग़ावत से मुझे बचाने की ख़ातिर झूठ मत बोलो! ये कोई मामूली वाक़या नहीं है।

सौतेली माँ : मुझे मालूम है। इसीलिए कहती हूँ, मैंने ही उसे ज़हर दिलवाकर मरवाया है!

मुहम्मद : नहीं, नहीं! ये ग़ैर-मुमकिन है। अम्मी, तुम मेरी जान क्यों खा रही हो? समझ नहीं सकतीं? आपका यह मज़ाक़ मेरे लिए किस क़दर तकलीफ़-देह है!

सौतेली माँ : (सर्द होकर) ग़ैर-मुमकिन क्यों है, मुहम्मद? वालिद और भाई को मरवाने से ये ज़्यादा आसान है! इमामुद्दीन की मौत से ज़्यादा जायज़ है!

मुहम्मद : मैंने अपने वालिद का क़त्ल किया है लेकिन तब मैं अपने बलंद ख़्यालों के पागलपन से अन्धा था? क्या मैं इस हक़ीक़त से बेख़बर हूँ? तुम नहीं देखतीं कि इससे मेरा ज़मीर किस क़दर ज़ख़्मी हुआ है? तुम महसूस नहीं करतीं कि उस बद-दुआ की तपिश किस क़दर मुझे जलाए जा रही है! मेरी सगी माँ मुझसे ख़फ़ा होकर तनहाई में ज़िंदगी काट रही है। इसी डर से मैंने शीशे में अपना चेहरा तक देखना छोड़ दिया कि कहीं अपने वालिद का चेहरा नज़र न आए, कहीं शेख़ इमामुद्दीन की शक्ल दिखाई न पड़े। मेरे क़रीब के सिर्फ़ तीन शख़्स रह गए थे। तुम, नजीब और बरनी। फिर अब तुम्हारे ही हाथों नजीब का क़त्ल होना था। क्यों? क्यों? आख़िर तुम्हें क्या पड़ी थी कि...?

सौतेली माँ : बचपन में तुम्हारा जोश-ख़रोश देखकर मुझे बड़ी तसल्ली हुआ करती थी कि तुम्हारी सलतनत में हर तरफ़ अमन-चैन क़ायम रहेगा, हुकूमत पायदार होगी। लेकिन तुम्हारी तख़्त-नशीनी के सात सालों में ही मुल्क का यह हाल हो गया। वालिद, भाई, शेख़ इमामुद्दीन जैसे एक के बाद एक तुम्हारे सनकी ख़्यालों के शिकार होते गए। उसके बाद तो जैसे मरने वालों का ताँता कभी टूटा ही नहीं। गोया सारा मुल्क क़साईखाना बन गया हो, और इस मुकम्मिल

तबाही का ज़िम्मेदार था तुम्हारा बदकार नजीब। वो तुम्हें भी अपने साथ घसीटे लिए जा रहा था जो मेरे लिए नाक़ाबले-बर्दाश्त था। उसके काले कारनामे...।

मुहम्मद : मेरे कारनामों की बुनियाद की तफ़तीश करनी थी तो उसके लिए नजीब का ख़ात्मा करने से क्या हासिल हुआ? इस तरह की ज़्यादती करने से...।

सौतेली माँ : ये ज़्यादती नहीं है, मुहम्मद!

मुहम्मद : सरासर ज़्यादती है। जो अपनी ही बेवकूफ़ी से बेख़बर हों, वो क्या समझेंगे कि नजीब के ख़्यालात क्या थे? गये छ: महीनों से उसने बार-बार मुझसे अर्ज़ किया था कि अपने ख़ूँख़्वार अमल से मुझे बाज़ आना होगा। तख़्ते-शाही की सलामती के लिए तशद्दुद का रास्ता छोड़ देना होगा।

सौतेली माँ : मगर उसकी मुख़ालिफ़त उसके भरोसे से भी ज़्यादा खतरनाक साबित होती। मुहम्मद! याद नहीं, उसने कहा था कि सियासत की बुनियाद पेशबंदी पर क़ायम है।

मुहम्मद : (अपनी बातें जारी रखते हुए) मेरे हाथों मारे जाने वालों के सब नाम तुमने गिना दिए। लेकिन संपन शहर के शहाबुद्दीन को भूल गईं। हक़ीक़त में वही मेरी तमाम कारगुज़ारियों का सबसे बड़ा सबूत था। मैंने उसकी लाश में खंजर कई मरतबा भोंका था ताकि लोगों पर ये ज़ाहिर हो कि बाग़ियों के साथ जूझता हुआ वो मारा गया। लेकिन हर बार, जब-जब खंजर से लाश को चीरता था, मेरे रोंगटे खड़े हो जाते थे! अजीब ख़ुशी की सनसनी मेरे जिस्म में दौड़ती थी। ऐसी वहशी ताक़त का एहसास होता था, जो पहले कभी महसूस नहीं हुई थी! तब मैं जान गया...यकायक समझ गया कि मेरी ख़ूँख़्वारी का वजूद मेरे दिमाग़ में नहीं, मेरी रगों में है। तशद्दुद मेरी रग-रग, रेशे-रेशे में रचा हुआ है। मुहब्बत-सुकून, अदलो-अमन वग़ैरह तमाम मुक़द्दस लफ़्ज़ उस वक़्त सिर्फ़ हर्फ़ों का पुलंदा नज़र आये और अपने अन्दर झाँका तो मैंने पाया कि मेरे पास अलावा ख़ूँख़्वारी और तशद्दुद के और कुछ नहीं है। सबसे पहले मैंने तीन आदमियों का क़त्ल किया। अपने वालिद, अपने भाई, और मोहतरिम शेख़

इमामुद्दीन का जो कि तीनों मेरे हम-शक्ल थे। इन तीनों हम-शक्लों की मौत हुई, इसे तुम क्या महज़ इत्तिफ़ाक़ समझती हो? ग़द्दार आईन-उल्-मुल्क को मैंने अवध का राज वापस कर दिया। इससे मेरी दरिया-दिली सब पर ज़ाहिर हुई। लेकिन आज उसी की रिआया उसे शेख़े-मोहतरिम का क़ातिल मानती है, और गाहे-बगाहे उसकी मलामत करती है, उसके मुँह पर थूकती है। क्या इसे भी इत्तिफ़ाक़ समझती हो? नहीं अम्मी, नहीं, दर-असल खूँख़्वारी और तशद्दुद की मुझे बेहद ज़रूरत थी और अब भी है ताकि तीर की मानिंद गुज़रती हुई मेरी ज़िंदगी को कोई ठोस निशाना मिले, ज़िंदगी को कार-आमद बनाने के लिए ठोस यक़ीन हासिल हो सके। वरना मेरा ज़ाहिरा आलम काफ़ूर हो जाएगा, और ये ब तन्हाई मुझे खा जाएगी। लेकिन इसके लिए तुमने नजीब को ज़िबह क्यों किया?

सौतेली माँ : तुमने अपने एतिक़ादों के लिए कितनों को बे-मतलब मरवा डाला! तो क्या तुम्हारे लिये मैं एक का क़त्ल भी नहीं करवा सकती थी?

मुहम्मद : (चीखकर) ग़लत! ग़लत!! ग़लत!! मेरी कार-गुज़ारियाँ बे-मतलब नहीं हैं। इन्हीं कार-गुज़ारियों की वजह से मुझे ज़िंदगी का ख़ास इनाम मिला है...इक़्तदार! मुझे अपने ख़्यालों को अमली-सूरत देने के लिए इक़्तदार चाहिए था, ताक़त की ज़रूरत थी। लेकिन तुम इस क़त्ल से क्या चाहती थीं? (फिर माँ की ओर देखकर जैसे एक नया ख़्याल आ गया हो) औरत! औरत! आख़िर तुम भी तो औरत ही हो। सौतेले बेटे पर बे-ग़रज़ ही शफ़क़त बरतती रहीं। ग़लत! मेरी अपनी वालिदा जिस बात के लिए मुझसे ख़फ़ा हैं कि मैं उनका कठपुतला नहीं बना, आख़िर तुम भी तो वही चाहती हो। नजीब के चंगुल से छुड़ाकर अपने जाल में फँसाने की तरकीब...।

सौतेली माँ : नहीं मुहम्मद! ख़ुदा की क़सम। अगर इक़्तदार हासिल करने का मेरा इरादा होता तो मैं ख़ुद कभी मौजूदा वाक़ये का इक़बाल न करती।

मुहम्मद : तुम नहीं बतातीं तो जलालुद्दीन का भाई बता देता। अगर

वो भी राज़ नहीं खोलता तो सरदार-लोग बग़ावत करते। चालाक औरत, काफ़ी होशियारी बरती है तुमने, लेकिन तुम इस ग़फ़लत में मत रहना कि तुम मेरी माँ हो, इसलिए सज़ा से बरी कर दूँगा। तुम्हारे प्यार की मैं रत्ती-भर क़द्र नहीं करूँगा...। (एकाएक टूटकर) हाय, अम्मी-जान! तुमने यह क्यों किया? इक़्तदार की अगर ख़्वाहिश थी तो दूसरा रास्ता अख़्तियार कर लेतीं। ये क्यों किया तुमने आख़िर?

सौतेली माँ : (बेटे के कन्धे पर हाथ रखती हुई) मेरी बात सुनो मुहम्मद!

मुहम्मद : (छिटक कर हट जाते हुए) हटा लो अपने हाथ! ग़द्दारी की एक ही सज़ा है...सज़ाए-मौत!

दो बार ताली बजाता है।

सौतेली माँ : अल्लाह तुम्हें सब्र अता करे! जल्दबाज़ी से काम न लो, मुहम्मद। मैं इल्तिजा करती हूँ, अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए। मुझे मरवा कर तुम ख़ुश नहीं रह सकोगे। अभी तुम्हारे वालिद का भूत तुम पर ग़ालिब है। शेख़ इमामुद्दीन का भूत तुम्हारे सीने पर सवार है! अब क्या मेरे भूत से भी अपनी ज़िंदगी को दूभर कर लेना चाहते हो?

मुहम्मद : शायद वो लोग मेरी बे-इन्साफ़ी की वजह से मारे गए मगर तुम महज़ इन्साफ़ की रूह से मारी जाओगी!

दो सिपाही दाख़िल होते हैं।

: तूने ज़िना-कारी से भी बदतर गुनाह किया है। हुकूमत के क़ानून में तेरे जैसे मुजरिमों के लिए एक ही सज़ा दर्ज है कि बाज़ार के बीचों-बीच तुझे खम्भे से बाँध दिया जाय और आते-जाते लोग पत्थर फेंक-फेंक कर तेरी जान ले लें!

माँ बेचैन हो जाती है, कुछ कहने की कोशिश करती है, मगर ना-कामयाब रहती है, जैसे दम घुट गया हो। 'ले...ले...लेकिन...' भर कह पाती है।

मुहम्मद : (सिपहियों से) ले जाओ इसे क़ैदख़ाने में।

सिपाही परेशान खड़े रहते हैं।

: (गरजकर) शाही हुक्म दुहराया नहीं जाता।

सिपाही उसे बाज़ुओं से पकड़ते हैं, माँ छुड़ाने

की कोशिश करती है।

: वज़ीरे-नायब को हमारा हुक्म पहुँचा दो कि कल सुबह इसे बाज़ार के बीच खम्भे से बँधवाकर मरवा दिया जाए।

सौतेली माँ : (फूटकर) मुहम्मद, और किसी तरीक़े से मुझे मरवा दो, लेकिन सबके सामने...।

सिपाही उसे खींचकर ले जाते हैं। मुहम्मद अकेला बेहोश-सा खड़ा रहता है। फिर एकाएक घुटनों के बल झुक जाता है, खौफ़-जदा होकर आँखें बन्द कर लेता है, हाथ ऊपर फैलाता है।

मुहम्मद : ऐ मेरे आक़ा, मेरे हाथ थाम ले। मैं नहीं जानता कि मेरे जिस्म की रगों में अपना खून कौन-सा है और बेगाना कौन-सा ? मैं भटक गया हूँ, मेरे मालिक ! तू ही बता, आँखों के आगे ये क्या है ? बियावाँ है या सब्ज़बाग़ ? ये बन्दा तेरी राह का मुसाफ़िर है आक़ा, उसे क्यों इस तरह रेगिस्तान में अकेला भटकने देते हो ? वो तेरे सहारे का मुंतज़िर है, दलदल में कीड़े की मानिंद कुलबुला रहा है। मालिक, उसे सहारा दे, उसे बीनाई दे ! खून से रंगी अपनी उँगलियों से तेरे ग़ैबी लिबास का दामन थामे वो घिसटता जा रहा है। मेरे आक़ा, मेरी फ़रियाद सुन ले, मुझ पर रहम कर। मैं बे-सहारा हूँ, खुदावंद, तू पनाह दे, तू पनाह दे, तू पनाह...।

बरनी दाखिल होता है।

बरनी : अल्लाह सुलतान को... (खामोश हो जाता है)।

मुहम्मद : (सिर उठाकर हड़बड़ाकर उठ जाता है) आओ बरनी, बड़े मौक़े पर आ गए। तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रिया ! तुमने मुझे ग़द्दारी से बचा लिया। मैं इबादत करने लग गया था, कितना बड़ा जुर्म मुझसे सर-ज़द होता ! मैंने ऐलान किया था कि खलीफ़ा खानदान का नुमाइंदा जब तक यहाँ क़दम नहीं रखेगा तब तक इबादत करने की सख्त मनाही है, और आज खुद शाही हुक्म की ना-फ़रमानी करने पर उतारू हो गया था। कितनी शर्मनाक बात हो जाती, लेकिन...मैं क्या करूँ, बरनी, न मालूम, कहाँ से यकायक कमज़ोरी ने मुझे आ घेरा !

बरनी : अब परेशान न हों, हुज़ूर ! वज़ीरे-नायब तांबे के सिक्कों

की देख-रेख में मसरूफ़ थे। इसीलिए मैं खुद खिदमत में एक खुश-खबरी सुनाने हाज़िर हो गया हूँ।

मुहम्मद : खुश-खबरी ? मुद्दत हो गई यह लफ़्ज़ सुने हुए !

बरनी : अभी खत आया है हुज़ूर, कि ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा ग़ियासुद्दीन अब्बासी दौलताबाद तशरीफ़ ला रहे हैं। एक-दो महीने में आली-क़द्र यहाँ पहुँच जाएँगे।

मुहम्मद : (गहरी साँस भरते हुए) अब उनके आने से भी क्या होगा बरनी ? अभी-अभी इबादत की कोशिश में था ! लबों पर सीखे हुए लफ़्ज़ गोया उछल-उछल पड़ते थे लेकिन दिल में उनकी गूँजें बिलकुल सुनाई नहीं पड़ीं। चाहे मैं पागल भी हो जाऊँ मगर अब अल्लाह-ताला का पागलपन मुझे हरगिज़ नहीं होगा। (ऊँची आवाज़ से) वो लियाक़त मुझे कैसे हासिल होगी बरनी। मैंने अपनी अज़ीज़ अम्मीजान को सज़ाए-मौत दी है। लेकिन मुझे एतिबार नहीं होता कि मेरी अम्मीजान गुनहगार हैं।

ढिंढोरची : सुनो, सुनो, दौलताबाद के बाशिंदो ! सुनो। खुदातर्स, खुदावंद, खलीफा के बन्दे तुग़लक मुहम्मद फ़रमाते हैं...। बगदाद के क़ाबिले-एहतिराम किर्दगार खलीफा अब्बीसी-अल्-मुस्तानसीर के फ़र्ज़ंदे-अर्ज़मन्द अब्दुल अज़ीज़ के फ़र्ज़ंदे-अर्ज़मंद युसूफ़ के फ़र्ज़ंदे-अर्ज़मंद ग़ियासुद्दीन मुहम्मद कल दोपहर दौलताबाद तशरीफ़ ला रहे हैं। इस पाक मौक़े पर सुलतान अपनी रिआया से उम्मीद करते हैं कि दौलताबाद का हर खासो-आम क़ाबिले-एहतिराम के इस्तक़बाल के लिए मौजूद होगा। कल का दिन दायमी मसर्रत का दिन है, मुबारक दिन है। मख्दूम ग़ियासुद्दीन की दुआए-खैर पाकर दौलताबाद का तख्ते-शाही पाक हो जाएगा। शाहे-सुलतान खलीफ़ा-ए-मुअज्जम की दुआएँ लेकर मुल्क की रहनुमाई हस्बे-साबिक करते रहेंगे।

शाहे-सुलतान आगे फ़रमाते हैं...। इस रोज़े-मुबारक के मौक़े पर उमूमी इबादतें, जो पाँच बरस बन्द थीं, अगले जुमा से फिर जारी होंगी। इस जुमा से हर रोज़ पाँच बार नमाज़ पढ़ी जाए। क़ुरान-शरीफ की शरीयतों की बाक़ायदा तामील की जाए।

सुलतान इसरार करते हैं कि कल दोपहर को ख़लीफ़ा-ए-मोहतरम के इस्तक़बाल के लिए दौलताबाद के तमाम बाशिंदे हाज़िर हों। सुनो ! सुनो ! सुनो !

दृश्य : 11

दौलताबाद के क़िले का बंद दरवाज़ा। सामने शाही रास्ते पर लोगों की भीड़-भाड़ जमा है।

पहला : कहते हैं, अगले जुमा से इबादत शुरू करो। अब किसे पड़ी है इबादत की !

दूसरा : इबादत से पहले रोटी तो मिले।

पहला : अरे, रोटी का नाम मत लो भैया, इबादत करो। बस, उसी को खाओ, उसी को बिछाओ, उसी को ओढ़ लो। जो कुछ अनाज है, वो शाही महल के अन्दर है।

दूसरा : क्यों, अमीरों के यहाँ भी अनाज भरा हुआ है।

पहला : पहले हमें रोटी दो, इबादत की बात फिर देखी जाएगी। अज़ाब-सवाब का हिसाब-किताब मुल्लाओं पर छोड़ दो।

तीसरा : लेकिन मैंने सुना है कि सुलतान ने दो खलिहान खुलवाए और लोगों में गल्ला बँटवाया है।

दूसरा : कहाँ का खलिहान ? कहाँ है अनाज ? सारे-के-सारे खलिहान खाली पड़े हैं। गेहूँ का दाना तक नहीं !

पहला : इस पर फ़रमाते हैं, इबादत करो। अब किसे पड़ी है इबादत की ?

तीसरा : परसों ही मेरे क़स्बे से मेरा छोटा भाई आया है। कहता है हमारा हाल फिर भी बेहतर है, मगर उनका तो बहुत बुरा हाल है। उसी ने बताया कि दो मुट्ठी गेहूँ लेना हो तो बीस रत्ती चाँदी दो।

दूसरा : (चिढ़कर) हुं !

तीसरा : कहता था कि रास्ते में क़दम-क़दम पर मुर्दे पड़े हुए थे। एक को मेरे भाई ने अपनी आँखों एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मरते देखा।

दूसरा : ऐ, बस करो।

तीसरा : कहते हैं कि दो-आब पर तो बद-हाली इस क़दर छाई हुई है कि इन्सान और गिद्ध साथ-साथ रहने लगे हैं। आदमी घास-पत्ती खाने लगे हैं। भुखमरी के शिकार एक घोड़े की खाल चबाते औरतें देखी गई हैं।

दूसरा : अब बस भी करोगे या नहीं ?

तीसरा : सुना है बरन शहर का भी यही हाल है। हमारे सुलतान के दोस्त ग़ियासुद्दीन बरनी वहीं के रहने वाले हैं। वहाँ की यह ख़बर है कि बरन के लोग सूखी खाल को उबालकर खाने लगे हैं।

दूसरा : मैं कहता हूँ, ख़ामोश हो जाओ।

लेकिन बाक़ी लोगों की दिलचस्पी तीसरे शख़्स की बातों से बढ़ती जाती है।

तीसरा : (दूसरे को चिढ़ाते हुए) हमारी हालत तो फिर भी ग़नीमत है। लेकिन सुना है, दो-आब का सबसे ज़्यादा बुरा हाल है। मेरा भाई कहता था कि किसी एक शहर में क़साई की दुकान के आगे छोटे-बड़े सब क़िस्म के लोग बड़ी तादाद में जमा थे। अब मेरे भाई ने नज़दीक जाकर देखा तो उसे मालूम हुआ कि क़साई जानवरों को जब काटता था तब जो ख़ून इधर-उधर छिटकता था उसी को चाट लेने के वास्ते वो भीड़ वहाँ जमा थी।

दूसरा : अरे बूचड़ ख़ाँ, अगर ख़ुद चुप नहीं होता तो लो मैं चुप करा देता हूँ।

दोनों में हाथापाई शुरू होती है। तीसरे के सीने पर दूसरा चढ़ बैठता है, फिर मुक्का मारता है। मुक्के मारते-मारते ख़ुद रोने लगता है। बाक़ी लोग बे-जान-से खड़े देखते रहते हैं।

पहला : अब यहाँ किसे इबादत की पड़ी है ?

एक सिपाही दौड़ा आता है।

सिपाही : ये क्या हो रहा है ? ऐसे रोज़े-मुबारक पर शाही क़िले के

दरवाज़े पर ही दंगा-फ़साद ! अव्वल दर्जे के अहमक़ हो। (दोनों को घसीटता हुआ) ऐसे बे-अक़्लों की गर्दन उड़ा देनी चाहिए।

सिपाही दोनों को किनारे हटा देता है, तब सातवें दृश्य वाली औरत अपने शौहर के साथ दाखिल होती है।

ऐलान करने वाला : होशियार, होशियार ! बा-अदब, बा-मुलाहिज़ा होशियार ...शाहे-शाहान सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक तशरीफ़ ला रहे हैं !

उसी वक़्त दूसरी तरफ़ से भी।

: होशियार ! होशियार ! दीने-आलम के नुमाइंदा, खलीफ़ा-ए-बग़दाद अब्बासी अल्-मुस्तानसीर पाक ख़ानदान के क़ाबिले-एहतिराम अमीर-उल-मोमीनीनं ग़ियासुद्दीन मुहम्मद तशरीफ़ ला रहे हैं !

अज़ीज़, उसके पीछे आज़म, और उन दोनों के पीछे सुलतान के सफ़ीर दाखिल होते हैं। अज़ीज़ ग़ियासुद्दीन के भेस में है, अंगूठी पहने हुए है। उसी वक़्त क़िले के भीतर से सीढ़ियाँ उतरता हुआ मुहम्मद दाखिल होता है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। मुहम्मद लम्हे-भर अज़ीज़ को घूर कर देखता है, जैसे उसे कुछ वहम हुआ हो, जिससे पल-भर के लिए अज़ीज़ के चेहरे पर परेशानी दौड़ जाती है।

सातवें दृश्य वाली हिन्दू औरत अज़ीज़ को देख कर 'ओह' कहती है, फिर ठीक से शनाख़्त करने के लिए एक क़दम आगे बढ़ती है।

औरत का शौहर : (बढ़ती हुई औरत को रोक कर) ऐ, कहाँ जा रही हो ?

औरत : वो देखिए ! उसकी आँखें देखिए।

उसी वक़्त अज़ीज़ मुहम्मद को गले लगा लेता है।

मुहम्मद : (गले लगने के बाद, ज़रा पीछे हट कर, भरी आवाज़ में) खुशामदीद, आली-क़द्र, आपके वुजूदे-मुबारक से मेरी सलतनत पाक हो गई। मुद्दत से आपके दीदार का मैं मुंतज़िर था। मुद्दत हुई कि दौलताबाद के गली-कूचे

सजदा-गुज़ारी की सुहानी सदा नहीं सुन पाए। जब तक आपके क़दमे-मुबारक दौलताबाद में दाखिल नहीं होते, तब तक आपके तावेदार इबादत करने के क़ाबिल ही कहाँ थे? अपने ही गुनाहों के काले साए से हमारे पाँव उलझे हुए हैं। अज़ाब के ज़ोर से क़हत व सूखे ने खेत के दाने-दाने को जलाके रखा है, इबादत पर गूँगापन काबिज़ हो गया है। अब जैसे आला-मरतबे की मौजूदगी से हमारी सलतनत में रौनक़-अफ़ज़ाई हुई है। (आवाज़ बलंद करके) वली-उल्लाह, आपकी ख़ाके-पा की इनायत हो, आपके हुक्म की बसरोचश्म हम तामील करेंगे। मरतबे-आला, हमें अपनी हिफ़ाज़त में लें।

मुहम्मद यह कहते हुए अज़ीज़ के आगे लेट जाता है। इकट्ठी भीड़ दंग रहती है, फिर ज़रा देर के बाद भीड़ भी सजदा करती है।

अज़ीज़ : हक़-पसन्द सुलतान, आप जैसी मज़हब-परस्त हस्ती जब दावत-नामा भेजे, तो हम कैसे इनकार करते? अल्लाह-ताला हमेशा आपको अपनी हिफ़ाज़त में रखे।

हिन्दू औरत : उसे देखो, वही आवाज़! वही नज़र!

मुहम्मद : (घुटने टेक कर) आज के रोज़े-मुबारक की याद में अगले जुमा से हम उमूमी इबादतें जारी करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि अब ब-दस्तूर दौलताबाद की गली-सड़कों में दीनों-ईमान के काम बिला-झिझक हों।

फिर अज़ीज़ और सुलतान गले लगते हैं। आज़म अन्दर-ही-अन्दर हँसना चाहता है, मगर अपनी तरफ़ सुलतान को आते देख कर हँसी को जबरन दबा लेता है। सुलतान आज़म के गले लगते हैं।

ऐलान करने वाला : क़ाबिले-एहतिराम नुमाइंदा-ए-ख़लीफ़ा...!

सिपाही : ज़िन्दाबाद!

ऐलान करने वाला : मज़हब-परस्त, खुदातर्स सुलतान...!

सिपाही : ज़िन्दाबाद!

बार-बार नारे लगते हैं, मगर लोग हारे हुए-से चुप हैं। ज्यों-ज्यों सिपाही लोग इशारा करने लगते हैं, और लोग भी जल्द-जल्द रसमी तौर

पर नारे लगाते हैं। मुहम्मद फ़र्शी सलाम करते हुए अजीज और आजम को भीतर ले जाता है। एक को छोड़ कर बाक़ी सिपाही भी भीतर चले जाते हैं।

हिन्दू औरत : वही है, वही है।

शौहर : कौन है? कहाँ है?

हिन्दू औरत : वही है क़साई, जिसने मेरे बच्चे की जान ली थी। वही निगाह, वही आवाज़। दिल्ली से आते हुए आधे रास्ते में उसने मेरे बच्चे को मारा। हाँ, वही है। (चीखकर) देखो, देखो, मेरे बच्चे का क़ातिल है, उसी ने मेरे बच्चे को मार डाला, मुझे बाँझ बना दिया। (शौहर उसे रोकने की कोशिश करता है) वो मेरे बच्चे का क़ातिल है, मैं उसे कच्चा चबा जाऊँगी। उसने मेरे बच्चे को मारा है।

पहला : क्या कहती है? कौन है? किसने बच्चे को मारा?

दूसरा : मैंने भी अच्छी तरह नहीं सुना, शायद सुलतान के मुताल्लिक़ कह रही होगी।

तीसरा : सुलतान के अलावा और कौन होगा! और कौन उसके बच्चे को मार सकता है?

चौथा : हाँ, हाँ, मार दिया होगा! जरूर क़त्ल किया होगा। 'रोटी मत खाओ, और जीते रहो' के मानी ही क़त्ल हैं। मेरी बेटी भी इसी तरह मर गई।

दूसरा : और कब तक यों छटपटाते रहेंगे, रोटी के लिए तरसते रहेंगे?

तीसरा : (भरी आवाज़ में) उस वक़्त अगर सिर्फ़ एक मुट्ठी अनाज मिल जाता तो मेरी बच्ची...।

पहला : ऐ रहमदिल सुलतान! हमें रोटी दो। इबादत वापस लो, हमें रोटी दो...।

सब : हमें रोटी दो, खलिहान खोलो, रोटी दो।

सिपाही : ख़ामोश रहो। (भीड़ को हटाने के लिए बढ़ता है)

एक : मारो, मारो मुझे, मैं भूख से नहीं मरूँगा। तुम्हारे भाले से मरना ज्यादा पसंद करूँगा। मारो, मारो!

तीसरा : कौन मारेगा? कौन किसको मारेगा? हम भी देखें कहाँ है मारने वाला?

भीड़ : हाँ, मारो। रोटी न दे सको तो हमें मारोगे? हमारा गला

घोंटोगे ? चलो देख लें। मारो उसे, उसकी चमड़ी उधड़ दो।

हंगामा। सब सिपाही को घेर कर मारते हैं। थोड़ी देर के बाद उसको छोड़ते हैं। खून से लथपथ जख़्मी सिपाही लुढ़क जाता है। उसी वक़्त और सिपाही आते हैं।

दृश्य : 12

शाही महल का एक कोना। अज़ीज़ चहल-क़दमी कर रहा है, उसी वक़्त आज़म दाख़िल होता है।

आज़म : अज़ीज़ !

अज़ीज़ : श्श...श्श...अहमक़ कहीं के ! कितनी बार मैंने कहा कि पिछला नाम मत लो ! इज़्ज़त के साथ गुफ़्तगू करो। वरना सारा खेल चौपट हो जाएगा !

आज़म : मैं तंग आ गया हूँ अज़ीज़। मैं जा रहा हूँ। इसी की ख़बर देने तुम्हारे पास आया था।

अज़ीज़ : जा रहा हूँ ! क्या माने ? कहाँ चले ?

आज़म : महल के दो मुलाज़िमों को रक़म दे दी है, दो घोड़े लाने के लिए। एक-आध घंटे में घोड़े लेकर वे यहाँ पहुँच जाएँगे। अब चलो, रवाना होने की तैयारी करो।

अज़ीज़ : अव्वल क़िस्म के बेवक़ूफ़ हो तुम। इतना आगे बढ़ने के बाद अब पीछे हटने की सोचते हो ? मैंने कितनी बार तुम्हें समझाया कि यहाँ किसी बात का डर नहीं। अब तुम्हारी नादानी की वजह से महल के उन मुलाज़िमों को हम पर शुबहा हुआ होगा। तुम तो जान-बूझकर क़साई के हाथों में अपनी गर्दन दे रहे हो। और आठ-एक रोज़ लिए सब्र करो। फिर देखो...।

आज़म : ख़ुदा जाने, तब तक क्या होगा। तुम शहर के लोगों से मिले हो ? उनका हाल देखा है ? बर्दाश्त के बाहर है।

कहीं लोगों की भीड़ पागल कुत्तों की तरह चीख़ रही है। कहीं बीमार लोग उल्लुओं की तरह कराह रहे हैं। कहीं आतश-ज़नी हो रही है, कहीं से जंगली जानवरों की तरह अजीबो-ग़रीब आवाज़ें आ रही हैं। तुम कभी बाहर गये हो ?

अज़ीज़ : नहीं।

आज़म : मैं गया था, छुपे-छुपे !

अज़ीज़ : छुपे-छुपे ? क्या बकते हो ? अगर किसी ने देख लिया होता तो...? सुलतान के मेहमान छुपे-छुपे जा रहे हैं ! कभी अंजाम भी सोचा है ! आख़िर तुम्हारे दिमाग़ में कूड़ा तो नहीं भरा है ? कितनी शान से कहता है कि छुपे-छुपे गया था।

आज़म : महल से बाहर जाने का एक ख़ुफ़िया रास्ता है। जिस रोज़ मैं यहाँ आया, उसी रोज़ उसे खोज निकाला था। और ख़ुफ़िया रास्ता बाहर जहाँ खुलता है, वहाँ कोई सिपाही तैनात नज़र नहीं आया। मैं दो मरतबा हो आया हूँ।

अज़ीज़ : (परेशान होकर) दो मरतबा ! दो मरतबा !

आज़म : जो देखा, उसे बयान नहीं कर सकता अज़ीज़ ! मेरा दिल भर आया। शहर के उत्तरी हिस्से में पतली उँगलियों की तरह जो सड़कें हैं, किले-नुमा जो इमारतें हैं, उनके पीछे एक बहुत बड़ा राज़ है। उन इमारतों में लोगों को लूट-लूट कर बटोरी गई दौलत दफ़्न है। उनके साथ कई मुर्दे भी ज्यों-के-त्यों पड़े हैं। लाशों का जमघट लगा है ! ये लाशें कितनी हैं, उनमें सिपाहियों की कितनी हैं, आम लोगों की कितनी हैं, कुछ पता नहीं चलता...। मुर्दों और मक्खियों का मेला-सा लगा है ! और इन लाशों के नीचे दौलत छुपा रखी है।

अज़ीज़ : लेकिन इस सब की ख़बर मुझे पहले क्यों नहीं दी ?

आज़म : क्योंकि मुझे शक़ था, कि शायद तुम मुझे बाहर जाने से रोक लो। अज़ीज़, अब मेरी हिम्मत पस्त हो गई है। मैं यहाँ नहीं रह सकता ? आज ही मैं यहाँ से निकल जाना चाहता हूँ। कहते हैं कि शहर के लोग आज बहुत थके हुए हैं, इसलिए यहाँ से भाग निकलने का यही एक अच्छा

मौक़ा है।

अज़ीज़ : आज़म, तुमने यह सोचा कि जिन मुलाज़िमों को तुमने घोड़े लाने के लिए रक़म दी है, वे तुम्हारे साथ वफ़ादारी बरतेंगे ? इसका क्या यक़ीन है ?

आज़म : लेकिन अज़ीज़, वे लोग सुलतान से वेहतर हैं। सुलतान पर जुनून सवार है, हथियार चलाने का ! मैंने-तुमने ही, सुलतान के हाथों मारे गये लोगों की कितनी लाशों में घास-फूस नहीं ठूँसी है ? ऐसे मालदार सुलतानों से तो ये मुलाज़िम अच्छे हैं। अज़ीज़ ! इस सनकी सुलतान की सलतनत में अगर कोई महफ़ूज जगह है तो यही शाही महल जो विलकुल सुलतान की नाक के नीचे है। मुझे क्या वता रहे हो अज़ीज़ ? मैंने जो कुछ देखा है, वो तुमने नहीं देखा। तुम्हें मालूम है कि मेरे कमरे के वाहर जो खुली जगह है, वहाँ तांवे के सिक्कों के कई अंवार लगे हैं।

अज़ीज़ : (हँसकर) तो उससे डर गये। उनमें ढेर-के-ढेर सिक्के तो हमारे ही वनाये हुए हैं।

आज़म : जिस दिन यहाँ आया था, उस रोज़ रात में मुझे नींद ही नहीं आयी। मैं खिड़की के पास खड़ा वाहर देख रहा था। चाँदनी फैली हुई थी। सिक्कों के वे अंवार साँपों के वड़े-वड़े घरौंदे-से लग रहे थे। ज़रा भी हवा नहीं थी। तभी मैंने देखा, उन अंवारों के वीच कुछ हरकत-सी हुई, एक साया हिलता नज़र आया। मैंने आँखें खोल-खोलकर देखा। कोई अकेला सिक्कों के अंवारों के वीच टहल रहा था। फिर वो साया एक अंवार के पास वेहिस बैठा रहा, आधे घंटे तक। फिर हाथों से खोद-खोदकर अपनी मुट्ठियों में सिक्के भरने लगा, खड़ा हुआ, और मुट्ठियों से मुसलसल उन सिक्कों को गिराता रहा। मुझे किसी भूत का ख्याल आया ! जानते हो वो कौन था ? वो हमारे सनकी सुलतान थे। ऐसी रात एक नहीं, तीन-चार रातें देखीं। मैंने तुमसे यह वात नहीं कही कि शायद कहीं तुम मेरा मज़ाक न उड़ाओ !

अज़ीज़ : वस ! इतने से डर गये...वुज़दिल ? वो मक़सद भूल गये, जिसकी तलाश में हम यहाँ आए थे ?

आज़म : उसकी फ़िक्र मत करो। यहाँ इनाम-तोहफ़े के नाम पर जो कुछ हीरे-मोती मिले हैं सबको गठरी बना के रखा है।

अज़ीज़ : अहमक़! किसी ने उस गठरी को देख लिया हो तो?

आज़म : रक़म छुपाने के तरीक़े अगर मैं नहीं जानता तो पेशेवर चोर कैसे तसलीम किया जाता? मैंने वो सब ठीक कर लिया है।

अज़ीज़ : तुम चले जाओगे तो मेरा क्या होगा आज़म? अगर सुलतान दरियाफ़्त कर बैठें कि आपके मुरीद आज़म कहाँ चले गये तो क्या जवाब दूंगा?

आज़म : तभी तो कहता हूँ कि तुम भी मेरे साथ चलो, अज़ीज़। दो घोड़े मँगवा लिए हैं। तुम समझदार हो। तुम मौत से खौफ़ नहीं खाते लेकिन मैं सचमुच अहमक़ हूँ। मेरा दिमाग़ बिलकुल खाली है, खोखला है फिर भी मैं तुम्हें अपना अज़ीज़ मानता हूँ।

अज़ीज़ : बे-वफ़ा, दग़ा-बाज़, चले जाओ...जाओ!

आज़म : (आजिज़ी के साथ) मैं क्या करूँ अज़ीज़? तुम भी मेरे साथ चलो! अब इस दौलत से बाज़ आओ। हम क्यों वज़ीर-सुलतान के बखेड़ों में पड़े? चलो, मेरे साथ, घोड़े आने ही वाले हैं।

अज़ीज़ चुप है।

: आओ, अज़ीज़, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।

अज़ीज़ अब भी चुप है। आज़म भरी आवाज में।

: तो मैं चला, अज़ीज़! अल्ला तुम्हें सलामत रखे।

चला जाता है।

अज़ीज़ : (दाँत भींचकर) अहमक़! बेवकूफ़! बुज़दिल!

दृश्य : 13

महल। पिछले दृश्य के आधे घंटे के बाद।

मुहम्मद : बरनी, मैं पूछ सकता हूँ, क्यों ?

बरनी : अर्ज़ किया न हुज़ूर, बरन शहर से ख़त मिला है। मेरी अम्मीजान का इंतक़ाल हो गया। उनकी ज़िंदगी के आख़िरी लम्हों में मैं उनके क़रीब नहीं रह सका। कम-से-कम मातम में तो शरीक हो सकूँगा।

मुहम्मद : (हमदर्दी से) यकायक ऐसा क्यों हुआ, बरनी ?

बरनी : मैं नहीं जानता हुज़ूर। मुझे जो ख़त मिला उसमें सिर्फ़ उनके इंतक़ाल की ख़बर थी।

मुहम्मद : अब चले जाओगे तो फिर मेरे दरबार में लौटने का इरादा है ?

बरनी : (मजबूर होकर) मैं नहीं जानता हुज़ूर !

मुहम्मद : अगर सिर्फ़ माँ की मातमदारी में शरीक होना है तो फिर वापस आने में क्या एतराज़ है ?

बरनी : मैं नहीं जानता हुज़ूर !

मुहम्मद : (झुंझलाकर) मैं जानता हूँ, बरनी, तुम्हारी माँ की मौत का बायस, तुम्हारे इतना ही मैं भी जानता हूँ। दौलताबाद के दंगा-फसाद की ख़बर पाकर बरन शहर में भी हंगामे हुए थे। इसकी मुझे ख़बर है, और मुझे यह भी ख़बर मिल चुकी है कि मेरे सिपाही यहाँ की तरह वहाँ भी औरतों-बच्चों की तमीज़ किए बिना सबको बे-रहमी से

मौत के घाट उतारते गये। बरनी, मुमकिन है कि ये सब मेरी ही ग़लतियों का नतीजा हो। इस पर तुम चाहे जितनी मेरी मलामत करो, मैं बर्दाश्त कर लूँगा। लेकिन, लेकिन क्या मेरी सूरते-हाल इस क़दर बद-तरीन हो गई है कि तुम्हें भी मुझसे झूठ बोलना पड़े !

बरनी : (आँसू भरकर) मैं पाँव पड़ता हूँ, हुजूर, मैं कुछ नहीं जानता, मुझसे कुछ न पूछिये।

एक सिपाही भागा हुआ आता है।

सिपाही : सुलतान सलामत रहें। ग़ज़ब हो गया हुज़ूर ! इजाज़त हो तो आज के हौल-नाक वाक़ये को बयान करूँ।

मुहम्मद : बताओ, क्या है !

सिपाही : ख़ुदावंद, मोहतरम ग़ियासुद्दीन के हम-क़दम आज़मजहाँ का क़त्ल हो गया।

बरनी : क़त्ल ! आज़मजहाँ का क़त्ल हो गया ?

मुहम्मद : (बग़ैर बेसब्री के) क्या हुआ ?

सिपाही : मैं हुज़ूरे-वाला का ख़ुफ़िया पहरेदार हूँ मालिक। शाही महल का जो ख़ुफिया रास्ता है, उसके दरवाजों पर मैं तैनात हूँ। पहले भी दो-एक बार आज़मजहाँ को वहाँ से आते-जाते देखा। लेकिन मुअज्ज़म की ताज़ीम के ख्याल से चुप रहा। आज, अभी आधी घड़ी पहले भी आज़मजहाँ उसी रास्ते से बाहर आए। मैं बदस्तूर अपनी जगह बैठा रहा। मोहतिरम ने कुछ आवाज़ लगाई जिसे सुनकर दो बदमाश चार घोड़े लेकर उनके क़रीब आए और आज़म-जहाँ ने भीतर से एक भारी गठरी लाकर घोड़े की पीठ पर रखी। तब मुझे शुबहा हुआ। मैं बलंद आवाज़ में कुछ पूछना चाहता था कि उनमें से एक ने आज़मजहाँ पर तलवार से वार कर दिया। जब तक मैं अपने हम-पुश्तों को लेकर मौक़े पर पहुँचा तब तक बदमाश उस भारी गठरी के साथ घोड़ों पर सवार होकर फ़रार हो गए थे। कुछ सिपाही उन बदमाशों की तलाश में रवाना हो चुके हैं। बाक़ी सिपाही आज़मशाह की लाश को महल के अंदर ला रहे हैं। इसी वाक़ये की ख़बर देने की ख़ातिर मैं सुलतान के हुज़ूर में भाग आया। मेरी जो भी ग़लती हुई है, मुझे माफ़ कर दें हुज़ूर।

मुहम्मद : मरने से पहले आज़मजहाँ ने कुछ कहा था ?

सिपाही : नहीं हुज़ूर। हमारे पहुँचने तक उनमें थोड़ी-सी जान रह गई थी। उनको देखने से लगा कि गोया अपने आप पर हँस रहे हों। अब मैं सही तौर से बता नहीं सकता कि वो हँसते थे या कराहते थे ख़ुदावंद। ये तेरी ग़लती थी कि मैंने पहले से उन्हें रोका नहीं था।

मुहम्मद : उसका ख़्याल मत करो मगर एक बात याद रखो। आज के वाक़ये की ख़बर शाही महल में किसी तक न पहुँचे। ख़बरदार !

सिपाही : जो हुक्म।

मुहम्मद : तुम जाओ। जाते-जाते दरवान से कह दो कि वो मुअज्जम ग़ियासुद्दीन को फ़ौरन यहाँ पेश करे।

सिपाही : अभी हुक्म बजा लाता हूँ हुज़ूर।

मुहम्मद : लेकिन ख़बरदार, उनको भी इस वाक़ये का सुराग़ न मिले।

सिपाही : जो हुक्म।

सिपाही चला जाता है।

बरनी : यह क्या नया हादसा पेश हुआ, हुज़ूर। मैं तो कुछ भी नहीं समझ पाया।

मुहम्मद : (झुँझलाकर) अगर नहीं समझते तो यहाँ से रवाना होने की बे-क़रारी को थोड़ी देर के लिए ज़ब्त कर लो, और यहाँ होने वाली हर बात को ग़ौर से अपनी आँखों देखो। तुम्हारे जैसे वाक़या-नवीस को ऐसे मौक़े बार-बार नहीं मिलते।

बरनी : ख़ुदावंद, मैं ग़रीब हूँ, ना-समझ हूँ, आप जैसा चाहें मेरा मज़ाक़ करें, आपको पूरा हक़ है। लेकिन मैं अर्ज़ करता हूँ हुज़ूर, कि मैं जो यहाँ से जा रहा हूँ, उसका ग़लत मतलब न लगाएँ। मैंने आपके दरबार में सात साल गुज़ारे हैं। कौन ऐसा बदनसीब वाक़या-नवीस होगा जो यहाँ बिताये गये सात साल के अरसे के लिए अपनी ज़िंदगी निछावर न कर देगा ! इसके लिए मैं ता-ज़िंदगी आपका एहसान-मंद रहूँगा, हुज़ूर।

मुहम्मद : विदाई के मौक़े पर भी क्या तक़रीर की ज़रूरत होती है, बरनी ? तुम्हें यहाँ से जाना है, जाओ। मेरे दरबार को

छोड़कर जाने वालों में तुम कोई पहले आदमी नहीं हो। वहुत लोग चले गये, कोई सीधे रास्ते से, कोई उल्टे रास्ते से, अव तुम भी आराम से अपने रास्ते चले जाओ! मतलब-वेमतलब की वेकार हुज्जत में क्यों पड़ें।

तकलीफ़-देह सन्नाटा।

वरनी : आप मुअज्ज़म ग़ियासुद्दीन से बाद में मुलाक़ात नहीं कर सकते हैं हज़ूर ? आज जुमा है, थोड़ी ही देर के बाद आज उमूमी इवादत शुरू की जाएगी। (एकाएक) लेकिन आज़मजहाँ की मौत का जो काला साया पड़ा है, उसका क्या होगा ? इबादत को बन्द नहीं करेंगे ?

मुहम्मद : (व्यंग्य से) नहीं, नहीं, ये पाँच बरसों की ख़ामोशी के बाद आने वाली पहली उमूमी इबादत है। हज़रत ग़ियासुद्दीन जैसी पाकीज़ा हस्ती ने दौलताबाद में अपने क़दमे-मुबारिक रखे हैं! उस पाक लम्हे की खुशी में आज यह इबादत शुरू हो रही है। इसे अब आज़मजहाँ की मौत की वजह से क्यों मुलतवी करें, बरनी ? नहीं, बरनी नहीं। (ठहाके के साथ) इस वक़्त यहाँ नजीब को होना चाहिए था। वो इस मज़ाहिया खेल का तह तक मज़ा लेता!

अज़ीज़ सिपाहियों के साथ आता है। मुहम्मद और बरनी झुक कर बंदगी करते हैं। सिपाही चले जाते हैं।

अज़ीज़ : (दुआएँ देते हुए) अल्लाह सुलतान को सलामत रखे!

मुहम्मद : मोहतरिम, ख़ैरियत से तो हैं!

अज़ीज़ : आपकी सख़ावत और फ़ैयाज़ी के रहते किस बात की तकलीफ़ होती, हुज़ूर!

मुहम्मद : शहर में जो दंगे-फसाद हुए, उससे शायद हज़रत को बड़ी तकलीफ़ हुई होगी। इस हंगामे के बीच मैं आपकी ख़िदमत में हाज़िर न हो सका। मोहतरिम मुझे माफ़ करें।

अज़ीज़ : हमें इस बात का बड़ा अफ़सोस है कि हमारे आने के बाद ही ये हंगामे शुरू हुए हैं। जो हमारी बंदगी करने आए थे, वे ही लोग आपके खिलाफ़ खड़े हो गये, दंगा करने पर उतारू हो गये। कहना ही होगा कि दीनो-ईमान का इक़बाल मद्धम पड़ता जा रहा है। ये दुनिया की बद-नसीबी है। हमारी बद-नसीबी है।

मुहम्मद : आपको ऐसी दहशत-नाक ख़बर दे रहा हूँ कि शायद सुनकर गहरा सदमा पहुँचे। अभी एक पहरेदार से ख़बर मिली कि आज़मजहाँ की लाश शाही महल के बाहर पड़ी मिली है। उसने बताया कि मोहतरिम का किसी ने ख़ून कर दिया।

अज़ीज़ : या ख़ुदा! अहले-जहाँ पर ये क्या बीत रहा है! आज़म जहाँ जैसे बेक़सूर शख़्स का ख़ून करने से उन्हें क्या मिला?

मुहम्मद :, (सहसा) कौन हो तुम?

लम्हे भर कोई नहीं बोलता। अज़ीज़ की आँखों में दहशत छा जाती है।

: कौन हो तुम, बदमाश इस नक़ली भेस में और कब तक शाही महल में रहने का इरादा है?

बरनी : ये आप क्या फ़रमा रहे हैं हुज़ूर!

मुहम्मद : (चीखकर) बताओ, मेरी कुव्वते-बरदाश्त को आज़माने की नादानी मत करो।

अज़ीज़ : (घबराए बिना) मैं एक धोबी हूँ हुज़ूर। मेरा पहला नाम अज़ीज़ है। उसके बाद बीसों नाम मिले।

बरनी : (जैसे होश-हवाश क़ायम नहीं रख रहा है) तो हज़रत ग़ियासुद्दीन साहब कहाँ हैं?

मुहम्मद : ग़ियासुद्दीन जैसे नेक-कर्दार, पाक-दिल के क़ातिल को कौन-सी सज़ा मिलेगी, जानते हो? तुम्हें पता भी है कि हमें और हमारी रिआया को धोखा देने वाले दग़ा-बाज़ को कौन-सी सज़ा मिलेगी!

अज़ीज़ : मैं नहीं जानता हूँ हुज़ूर। फिर सुलतान की कुव्वते-तसव्वुर को मैं किसी भी हालत में कमतर नहीं समझता। लेकिन ख़ुदावंद आप मुझे सज़ा देंगे तो आपको अपने ही साथ बे-इन्साफ़ी करनी पड़ेगी।

बरनी : (चिढ़कर) बदकार के मुँह से इन्साफ़ की बात!

अज़ीज़ : पाकदिल, यह लफ़्ज़ सिर्फ़ शेख़ इमानुद्दीन को ज़ेब देती है हुज़ूर। ग़ियासुद्दीन को अगर आप देख लेते तो शायद ही आप उनको नेक-कर्दार या पाक-दिल तसलीम करते। मैं धोबी ख़ानदान का नुमाइंदा हूँ। और वो ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा थे। बात सही है। लेकिन (**धीमे से**) ये बात ख़ुद सुलतान भी समझते हैं कि बड़प्पन और

ख़ानदान का कोई वास्ता नहीं होता।

बरनी : गुस्ताख़ ! तू सुलतान की तौहीन करता है ?

मुहम्मद : तुझे भी बड़प्पन का दावा है ? किस बूते पर तू यह दावा कर रहा है ?

अज़ीज़ : हुज़ूर, मेरी साफ़-गोई को माफ़ करें। जब से आप तख़्त-नशीन हुए हैं, मैंने आपके हर काम पर ग़ौर किया है। आपकी हर बात तहे-दिल से सुनी है। निज़ामे-सलतनत की हर कारगुज़ारी को समझने की मैंने कोशिश की है, आपका असल मोतक़िद बनने की जद्दो-जहद की है।

मुहम्मद : क्या अब ख़ुशामद पर उतर आए ?

अज़ीज़ : अगर मैं आपका मोतक़िद कहलाऊँ तो दाद मुझे मिलनी चाहिए हुज़ूर, आपको नहीं। जबसे आप तख़्त-नशीन हुए, तब से मैं देख रहा हूँ कि आप हर मौक़े पर अपने ख़्यालों और मक़सद को समझाने की कोशिश करते रहे हैं। लेकिन कितने लोगों ने आपकी बातों पर ग़ौर किया है ? जब से मैंने होश सम्भाला...।

मुहम्मद : (बेज़ार होकर) उफ़्फ़ोह, अब क्या हमें तेरी ख़ुद-बयानी सुननी होगी ?

अज़ीज़ : हाँ, हुज़ूर, हक़ की ख़ातिर सुननी होगी।

बरनी : ख़ुदावंद, एक बार मेरी आख़िरी दरख़्वास्त सुन लीजिए ! ये बड़ा ख़तरनाक शख़्स है। ये आपके चारों ओर अपनी ऐयारी का जाल बिछा रहा है। इससे बातें करने से क्या हासिल होगा हुज़ूर ! इसे सज़ा का हुक्म दीजिए, सज़ाए-मौत...।

अज़ीज़ : जनाब बरनी, सुलतान मुझे सज़ाए-मौत नहीं दे सकते। आप शायद नहीं जानते कि मुझे सज़ाए-मौत देने पर सुलतान की सूरते-हाल क्या होगी !

मुहम्मद : (भौंहें चढ़ाकर) मेरी सूरते-हाल !

अज़ीज़ : साफ़गोई के लिए फिर माफ़ी माँगता हूँ हुज़ूर। आपने मुझे ख़लीफ़ा ख़ानदान का नुमाइंदा तसलीम किया है। अवाम के सामने मेरा इस्तक़बाल किया है। फिर मेरे नाम पर पाँच बरस से बंद इबादत को दुबारा शुरू करने वाले हैं। सबके सामने आप मेरे पाँव पकड़ चुके हैं। अब अगर लोगों को ये मालूम हो जाए कि मैं हज़रत ग़ियासुद्दीन

नहीं हूँ, महज़ खेड़े का एक धोबी हूँ तो लोग मज़ाक नहीं उड़ाएँगे !

बरनी : कमीना...।

अज़ीज़ : और अब आज़मजहाँ के क़त्ल के बाद सुलतान मेरा क़त्ल पोशीदा तौर पर भी नहीं करवा सकते। एकाएक दोनों मुअज़्ज़म मेहमान शाहीमहल से ग़ायब हो जाएँ, तो क्या लोगों को शको-शुबहा नहीं होगा, आप ही बताइए। (मुहम्मद की तरफ़ मुखातिब होते हुए) लेकिन मैं उस बूते पर यहाँ नहीं खड़ा हूँ हुजूर। आपने हमेशा हिम्मत और ज़िंदा-दिली की क़द्र की है। मुझे यक़ीन है कि आप मेरी ज़िंदा-दिली की तारीफ़ चाहे न करें, मगर उसे हक़ीर नहीं समझेंगे।

मुहम्मद : (लम्हे-भर चुप रहकर) तुम्हें कहना क्या है ?

अज़ीज़ : अपनी कहानी। मैं एक ग़रीब धोबी के ख़ानदान में पैदा हुआ था। बड़ी बदहाली में मेरे दिन कट रहे थे। उसी वक़्त आप तख़्त-नशीन हुए, हिन्दू-मुसलमानों की बराबरी का ऐलान किया। उन्हीं दिनों मुझे ख़बर मिली कि आपके कुछ कारिंदों ने एक बरहमन की ज़मीन-जायदाद ज़ब्त कर ली है। मैंने उस बरमन से ज़मीन की मिल्कियत ख़रीद ली। ख़ुद बिरहमन बना और आपके ख़िलाफ़ अदालत में फ़रियाद की। आप हक़-पसंद हैं ही। आपने वो ज़मीन-जायदाद वापस करा दी, जुरमाने के तौर पर रक़म भी दिलायी और अपने ही दरबार में आपकी ख़िदमत करने का मुझे मौक़ा भी अता किया।

बरनी : ये ठगी की कहानी तब से शुरू हुई है !

मुहम्मद : लेकिन उसके लिए तुम्हें बिरहमन का भेस ही भरना था ?

अज़ीज़ : हाँ, हुज़ूर।

अज़ीज़ इस ख़्याल से कि शायद सुलतान कुछ आगे भी पूछ ले, थोड़ी देर चुप रहता है। फिर अपनी बातें जारी रखता है।

अज़ीज़ : मैं और आज़म, आपकी ख़िदमत करते हुए दौलताबाद पहुँचे। वहाँ आपने तांबे के सिक्के जारी किए। फ़ौरन आपकी मुलाज़िमत छोड़ दी, और जाली सिक्के बनाने में जुट गये।

वरनी : लाहौल !

अज़ीज़ : उस धंधे में हमने ख़ूब रक़म कमायी। तांबे के सिक्के बनाते-बनाते हाथ बेहिस हो गए। तब हम दो-आब रवाना हुए। वहाँ हमने ज़मीन खरीद ली, खेती करने के वास्ते।

वरनी : सूखे में खेती !

मुहम्मद : तुम इसकी दलील नहीं समझे बरनी। क़हत और सूखे की वजह से इन लोगों को गोया मुफ़्त में ज़मीन मिली होगी। इसके अलावा मैंने ऐलान करवाया था कि जो कोई दो-आब की सूखी ज़मीन में भी खेती करने की कोशिश करेगा, उसकी माली मदद की जाएगी। इन बदकारों ने मेरे उस ऐलान का भी मनमाना फ़ायदा उठाया। लेकिन खेती-बाड़ी नहीं की। जो माली मदद मिली, उसे भी बटोर ले गये। उसी रात को शायद हमारे कारिंदों का इनकी बद-नीयती का सुराग़ मिल गया होगा। इसलिए कारिंदों के हाथों से बचने के लिए फिर भेस बदलकर भाग आए होंगे। और नया धंधा, डाकू-लुटेरों का, चालू किया होगा। (अज़ीज़ से) यही है न तुम्हारी ज़िंदा-दिली की तफ़सील !

अज़ीज़ : आपकी रोशन-दिमाग़ी की शोहरत हर जगह फैली है हुज़ूर। उससे इनकार करने की जुर्अत मैं कैसे कर सकता हूँ ? आपने जो कुछ फ़रमाया वो सही है लेकिन आपने एक खास मंजिल छोड़ दी। हमने दो-आब से भागने की कोशिश की थी, मगर आपके हाकिमों के चंगुल से निकल भागना आसान नहीं था। एक बार अगर किसी के पीछे पड़ जाएँ तो बस शिकारियों का जुनून उन पर चढ़ जाता है। अगर कहीं पकड़े जाते तो फिर जान की ख़ैर नहीं थी। अब एक ही रास्ता था, आपकी फ़ौज में भरती होना। फ़ौज की छावनी दो-आब में ही थी। हमें वहाँ फ़ौरन मुलाज़िमत मिल गई। हम दोनों का काम था, उन लोगों की लाशों में घास भरना जो आपके खिलाफ़ बग़ावत करने की वजह से मौत के घाट उतार दिए गये थे। हम लोग घास-फूस भरने के बाद उनको शाही महल के बाहर लटका देते थे। इस तरह कई महीनों तक अपनी रोज़ी

चलाते रहे। वे दिन भी कैसे कमाल के थे! हर रोज़ किसी-न-किसी सरदार या अमीर की लाश हमारे हाथ से गुज़रती थी। उन्हीं दिनों वहाँ रहते मुझे एक नई बात का इल्म हुआ कि इन्सान की ज़िंदगी की कोई क़द्र नहीं, मौत से डरना सबसे बड़ी ना-समझी है। ज्यों ही इस सच्चाई का इल्म हुआ मेरे दिल को बहुत सुकून मिला। उसी दिन फ़ौज से विदा लेकर डाकू बन गया।

मुहम्मद : (व्यंग्य से) सचमुच ही ख़ास मंज़िल थी। अब अगली मंज़िल में क्या हुआ ?

अज़ीज़ : आपकी मेहरबानी थी कि खौफ़ मुझसे दूर भाग गया। अब मैं डाकुओं का शहनशाह था। दूसरे डाकू मेरे नाम से काँपते थे। और वाक़ई मैंने चोर-डाकुओं की अलग सलतनत क़ायम की। इसी अरसे में मुझे कहीं से ख़बर मिली कि कोई दरवेश मुसाफ़िर हमारी सलतनत में आया हुआ है जो अपने को ख़लीफ़ा का नुमाइंदा और सुलतान का मेहमान बताता है। लेकिन उसकी जेब में एक कौड़ी भी नहीं थी। मैंने इसे अपने लिए सुनहरा मौक़ा माना। ग़ियासुद्दीन का क़त्ल किया और आपका दीदार करने सीधे आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ। यह हक़ीक़त है कि मैंने ग़ियासुद्दीन का क़त्ल किया और आपको धोखा दिया। फिर भी मैं ख़ुद को आपका मोतक़िद मानता हूँ हुज़ूर! इन पाँच बरसों में जो भी काम मैंने हाथ में लिया, शुरू करने से पहले ज़रूर आपको याद किया। ख़ुदावंद, आपके पास अक़्ले-सलीम है। आप ही बता दें, आपकी सलतनत में और कौन ऐसा शख़्स होगा जिसने मुसलसल पाँच बरसों तक इस क़दर वफ़ादारी बरती हो कि वो अपने हर काम का आपके काम से मुक़ाबला करता रहा हो!

बरनी : (ग़ुस्से में आकर) हुज़ूर, हुज़ूर ये ज़हरीला साँप है! फ़ौरन इसे जल्लादों के हवाले कर दीजिए।

अज़ीज़ : बरनी साहब, बिला-शक आप मुझे क़ुसूरवार मान लें। लेकिन इस सूरत में आप ये नहीं भूलिएगा कि मेरे ही बराबर सुलतान भी क़ुसूरवार हैं।

मुहम्मद : (एकदम फूटकर) बन्द करो अपनी बद-ज़बानी को!

इतनी जुर्अत कि हमारे ही मुँह पर बे-लगाम हो जाओ। बेवक़ूफ़, अपनी हद में रहो। मेरा मोतक़िद कहलाने का दावा करते हो, मगर तुमने मेरे एतिक़ाद की सख़्ती को कभी आज़माया भी है ? लोगों के डर से क़दम पीछे हटाते कभी मुझे देखा है ? अब लोगों के मज़ाक से मैं डर जाऊँगा? एक ज़लील कमीने की इतनी मजाल कि मुझ पर अपनी होशियारी का जाल फैला दे ? सूली से दो गज़ नीचे जब तेरी ज़बान लटकने लगेगी तब तेरी ख़बासत की ख़बर लूँगा। मैंने अपने वालिद की परवाह कहीं की। दीनो-ईमान का ख्याल नहीं किया। सैयद-इमामों को दर-किनार कर दिया, यहाँ तक कि अपनी रिआया पर भी मैंने रहम नहीं किया तो अब तेरी हक़ीर हरकतों से घबरा जाऊँगा ? आखिर ख़लीफ़ा का भेस भरने वाले एक नाचीज़ धोबी की औक़ात ही क्या है ?

अज़ीज़ : (धीमे से) मैंने अपना पेशा खूब निभाया है हुजूर। गंदगी धोने का काम मैंने इस लम्हे तक जारी रखा है। इस लिहाज़ से किसी ख़लीफ़ा से मेरी हैसियत कम नहीं है।

मुहम्मद एकाएक हँस पड़ता है।

मुहम्मद : मरहबा ! (हँसकर, बरनी से) इस गुस्ताख़ की जुर्अत मुझे बहुत पसंद आयी। बरनी, ऐसे बेबाक शख्स को हमने कभी नहीं देखा था। अज़ीज़, अब तुम ही बताओ, तुम्हें क्या सज़ा दी जाए ?

अज़ीज़ . अपने किसी सूबे का सूबेदार बना दें, हुजूर।

मुहम्मद : सूबेदार ! सज़ा तुझे मिल रही है अहमक़, हमें नहीं।

अज़ीज़ : ख़ादिम को ग़लत न समझें हुजूर। अब तक बग़ैर किसी मक़सद और रहनुमाई के मनमाना मैं करता रहा। बिना सोचे-समझे हस्बे-मौक़ा काम को अंजाम देता रहा। और मुझे अपनी इन कारगुज़ारियों पर फ़ख भी नहीं है हुजूर। अब हुजूर, मैं अर्ज़ करता हूँ कि आप मुझे मौक़ा दें ताकि मैं आपके साथ वफ़ादारी बरतूँ। आपके वास्ते मैं अपनी ज़िंदगी वक़्फ़ करने को तैयार हूँ।

मुहम्मद : शाबाश ! शाबाश ! न मालूम मैं भी अहमक़ाना हरकतें क्यों करने लगा। नहीं, शायद तेरे लिए सूबेदारी ही माक़ूल सज़ा है। आज़मजहाँ को दफ़्न करने के बाद तू

अरबिस्तान वापस जा। फिर आधे रास्ते में ग़ायब हो जाना। मंजूर है ?

अज़ीज़ : ग़ायब होने के फ़न में मैं खासा माहिर हूँ हुजूर।

मुहम्मद : दक्खिन के लिए हमें कुछ सरदारों की जरूरत है। हम तुझे सरदार का ओहदा अता करते हैं। तुम बिलकुल पोशीदा तौर पर दक्खन जाओ। वहाँ के सिपहसालार खुशकामलिक, को अलग से हम खत भिजवा देंगे। वो तुम्हारा इस्तक़बाल करेगा। तुम वहाँ के सरदार बना दिये जाओगे।

अज़ीज़ : हुजूर, ख़ादिम क्या अर्ज़ करे! आपकी फ़ैयाज़ी का शुकरिया मैं कैसे अदा करूँ! क़ुरान-शरीफ़ की क़सम खाकर कहता हूँ...।

मुहम्मद : बस, बस, अब बेकार स्वाँग मत भरो। तुम्हारे लिए हुक्म-नामा अलग से भिजवा देते हैं। अब तुम यहाँ से जाओ। इबादत का वक़्त हो रहा है। अभी तुम मुअज़्ज़म ग़ियासुद्दीन हो, ख़बरदार।

अज़ीज़ : जानता हूँ मालिक। और आपकी इजाज़त हो तो आपके हक़ में सैयद-इमामों के ख़िलाफ़ एक ज़ोरदार बयान दूँ।

मुहम्मद : (बेचैनी के साथ) नहीं, तुम उसके क़ाबिल नहीं हो। अब जाओ यहाँ से।

अज़ीज़ : (झुककर बंदगी करता हुआ) आपने मुझ पर जो एतिबार किया, जो रहम किया उसके लिए ता-ज़िंदगी एहसानमंद रहूँगा हुजूर।

चला जाता है। वहाँ थोड़ी देर सन्नाटा छा जाता है। मुहम्मद आहिस्ते से तख़्त की तरफ़ जाता है। अब उसकी चाल में एकाएक थकावट नज़र आती है। लगता है उसके हवास अब कम-जोर हो चले हैं।

बरनी : ख़ुदावंद, आपने उस बदमाश का इस हद तक एतिबार किया कि उसे इनामो-इकराम बख़्शा। आख़िर ऐसी कौन-सी ख़ुसूसियत आपको उसमें नज़र आई हुजूर ?

मुहम्मद : आज उस बदमाश ने मुझे एक नई बीनाई दी, बरनी। उसने ऐसी सचाई से मुझे रूशनास किया जिसका एहसास मुझे पहले कभी नहीं हुआ था। उसी बदमाश से मुझे यह

सवक़ मिला कि हमारे कट्टर दुश्मन वो हैं जो हमें और हमारे ख्यालों को समझने का दावा करते हैं।

वरनी : मैं ख़ुदा की क़सम खाकर कहूँगा कि वो वदमाश कभी आपके साथ वफ़ादारी नहीं करेगा। मैं यक़ीनी तौर से कहता हूँ कि दक्खिन में सरदार होने के दो महीने के अंदर ही आपके खिलाफ़ वग़ावत खड़ी कर देगा और वो कामयाव हो गया तो अपने सूवे को दोज़ख वना देगा। आप क्यों नहीं समझते हुज़ूर ?

मुहम्मद : जव मैंने आईन-उल्-मुल्क को माफ़ किया था, उस वक़्त भी सव लोगों ने मेरी नुक्ताचीनी की थी, अकेले तुमने मेरी हिमायत की थी। लेकिन आज तुम मेरी फ़ैयाज़ी की इस तरह मुखालिफ़त क्यों करने लगे ?

वरनी : उल्-मुल्क से इस वदमाश धोवी का क्या मुक़ावला है हुज़ूर ? ये तो उल्-मुल्क की दोस्ती की तौहीन है।

मुहम्मद : पिछले हफ़्ते उल्-मुल्क का एक ख़त आया था।

वरनी : क्या लिखा था हुज़ूर ?

मुहम्मद : दौलतावाद के वाशिंदों की वद-हाली की ख़वर सुनकर उसने यहाँ की रिआया को अपने सूवे में आने की दावत दी है। उसने लिखा है कि हमारे लिए एक नया शहर आवाद किया गया है। रसद-कपड़े का खासा इंतज़ाम है। उल्-मुल्क ने दरख्वास्त की है कि हम अपनी रिआया के साथ अवध चले जाएँ और उसकी मेज़वानी को क़वूल करें।

वरनी : इससे तो उल्-मुल्क की नेक-नीयती और दरिया-दिली ही ज़ाहिर होती है हुज़ूर।

मुहम्मद : तो तुम समझते हो कि ये उल्-मुल्क की दरिया-दिली की निशानी है ? लेकिन तुम नहीं जानते वरनी, जवसे शेख इमामुद्दीन की मौत हुई है, तभी से अवध की रिआया उल्-मुल्क की वहुत मलामत करती रही है। रिआया पर अव उल्-मुल्क की वैसी पकड़ नहीं रही। हमें ख़वर मिली है कि उल्-मुल्क के खिलाफ़ साज़िशें हो रही हैं। इसलिए वो हमारी फ़ौज की कुमुक चाहता है। हमारी दोस्ती. चाहता है ताकि उसके वुजूद को हमारी हिमायत मिल जाए। क्या यह दावत-नामा उल्-मुल्क की इसी सूरते-हाल

का नतीजा नहीं ?

बरनी : यानी...आप अवध नहीं जाएँगे ?

मुहम्मद : हाँ, बरनी। मैं वापस दिल्ली जाना चाहता हूँ। अपनी रिआया के साथ। दारुल-सलतनत जब दिल्ली जाएगा, तो रिआया कैसे पीछे रहेगी ?

बरनी : (ग़मगीन आवाज़ में) हुज़ूर, आख़िर अपने आपको यों क्यों सताते हैं ? साथ अपनी रिआया को भी क्यों परेशान करते हैं ? आपकी रिआया आपके लिए परेशान हो, तक-लीफ़ें उठाए, मौत का सामना करे। और वो कमीना धोबी आपसे इनाम हासिल करे...ये कहाँ का इंसाफ़ है ? हुज़ुर, अगर किसी को मौत के घाट उतारना है, तो उसका पहला हक़दार ये धोबी है। उसकी गुस्ताख़ी और बदतमीज़ी के लिए जो भी सख़्त सज़ा दी जाए वो थोड़ी है। उसकी आँखों में गरम सलाखें रख दी जायें। उसे बोरे में डालकर दौड़ते घोड़े के पैरों में बाँध दिया जाए। उसे खौलते तेल में डुबो दिया जाए, या उसके जिस्म के टुकड़े... टुकड़े...।

मुहम्मद : बरनी, शाबाश तुमने तो उस धोबी को मात दे दी। शायद उसने भी इस तरह की संगीन सजाओं का ख़्याल नहीं किया होगा।

बरनी एकाएक जैसे चाबुक की मार खाकर तिलमिला जाता है।

: अगर सचाई इतनी सहल होती तो ज़िंदगी बहुत आरामदेह साबित होती बरनी। जब से तख़्त-नशीन हुआ, तब से मैं ऐसे लफ़्ज़ों के मानों की तलाश करता रहा हूँ। ज़िंदगी के मानों की तलाश में मैंने अपने को बहुत थका लिया है। बरनी, अब सारे माने ऐसे बेमानी हो गए हैं कि धोबी और उल्-मुल्क में कोई कुछ भी करे, उससे मेरा क्या वास्ता ! जो चाहे मेरी दरिया-दिली, मेरी सख़ावत, मेरी ज़िंदा-दिली, सब कुछ लूट के ले भागे...फिर भी मैं रहूँगा, बरनी, मेरे साथ मेरा अपना 'मैं' रहेगा और मेरी सनक रहेगी। मगर याद रखना, अपनी सनक में मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ और भी एक मौजूद है। वो ख़ुदावंद अल्लाह-ताला !

फिर थकी आवाज़ में।

: मेरे बारे में फ़ैसला करते वक़्त अल्लाह को न भूलना।

वरनी : (काँपती हुई आवाज़ में) हुज़ूर, मैं फ़ैसला आपके बारे में नहीं, खुद अपने बारे में देना चाहता हूँ। इसी वास्ते मैं यहाँ से विदा लेना चाहता हूँ और अभी जाना चाहता हूँ, वरना न जाने मैं कहाँ खो जाऊँ। अभी-अभी जो मैंने इस धोबी के लिए सज़ाएँ सुनाईं उन्हें याद करता हूँ तो मेरा ख़ून सूख जाता है। दिमाग़ चकरा जाता है। मैं कमज़ोर हूँ, बे-मक़दूर हूँ, हुज़ूर। अगर एक लम्हा भी और यहाँ रह गया, तो शायद तशद्दुद की बबा मुझे अपने आग़ोश में दबोच ले। नहीं हुज़ूर, मुझे अपनी हिफ़ाज़त करनी है। तशद्दुद के साथ चाहे आप छेड़छाड़ कर सकें, लेकिन मैं नहीं कर सकता। अगर मैं एक बार फँस गया तो शायद ज़िंदगी-भर न निकल सकूँ। आपने मुझे फिसलते-फिसलते बचा लिया। आपका एहसानमंद हूँ। मैं रुखसत होता हूँ हुज़ूर! इजाज़त दें।

मुहम्मद आँखें मूँदे चुपचाप तख़्त पर बैठा है।

: हुज़ूर!

मुहम्मद : (आँखें खोलकर) क्या बरनी?

वरनी : आपकी तबियत नासाज़ है हुज़ूर।

मुहम्मद : कुछ थकावट महसूस कर रहा हूँ और न जाने एकाएक नींद मुझे कहाँ से घेरनी लगी है। पाँच बरस से जो मुझसे भाग रही थी, वो नींद आज एकाएक मुझ पर हावी हो रही है। तुम जा रहे हो बरनी, तो जाओ। (हँसकर) लेकिन जाने से पहले हम सबके लिए इबादत करते जाओ।

आँखें बंद कर लेता है। बरनी ख़ामोशी के साथ चला जाता है, लगता है कि वो रो रहा है। मुहम्मद सोया हुआ है। स्टेज पर सन्नाटा हो जाता है। तब एक दरबान आता है।

दरबान : अल्लाह सुलतान को सलामत...।

मुहम्मद को सोया हुआ देखकर पीछे हटता है। फिर चला जाता है। मुहम्मद गहरी नींद में डूबा हुआ-सा, सिर आगे सीने पर झुका लेता है। नींद से ज़्यादा थकावट की अलामत नज़र

आती है। थोड़ी देर के बाद दरबान आता है, रेशमी शाल मुहम्मद पर डाल देता है और चुप-चाप सीढ़ी से उतरता है। उसी वक्त अज़ान सुनाई पड़ती है।

अज़ान : अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अशह्दो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशह्दो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशह्दो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
अशह्दो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
हैया इलस्सतात् ! हैया इलस्सतात् !
हैया इलल् फ़लाह ! हैया इलल् फ़लाह !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर ?
ला इल्लाह इल्लिल्लाह...।

मुअज्जिन की अज़ान सुनते ही दरबान सुलतान को जगाने के लिए आगे बढ़ता है, लेकिन और कुछ सोचकर वहाँ से चला जाता है। मुअज्जिन की अज़ान ख़त्म होती है। स्टेज पर सन्नाटा छाया रहता है। फिर एकाएक मुहम्मद की आँखें खुलती हैं। इधर-उधर देखने लगता है, जैसे उसे कुछ भी मालूम न हो, और उसकी आँखों में सिर्फ़ वहशत और खूँख़्वारी चमकती रहती है।

• • •